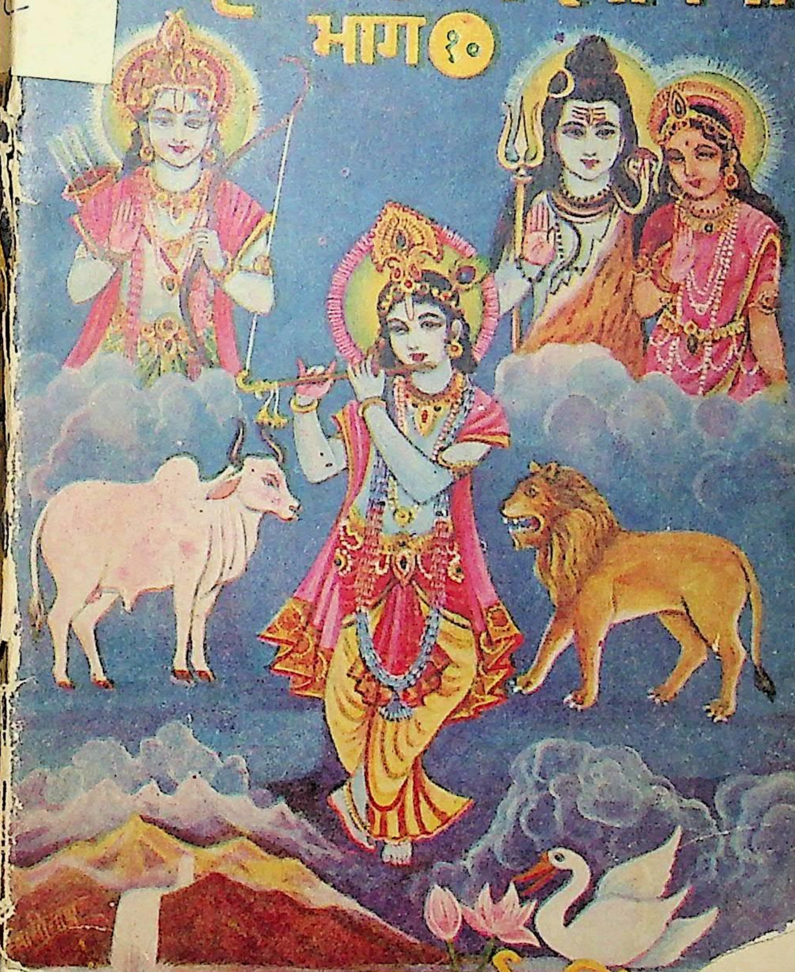
ांस्कृतिक कहानियाँ

भाग १०



सुदर्शन सिं

सांस्कृतिक कहानियाँ

[भाग - १०]

सुदर्शन सिंह 'चक्र'



प्रकाशन विभाग
श्रीकृष्ण - जन्मस्थान - सेवा - संस्थान
मथुरा - २८१००१ (उ० प्र०)

प्रकाशक	श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंस्थान
प्रकाशन-तिथि	माघी पूर्णिमा, वि सं० २०३५ १२ फरवरी, १९७९
प्रथम संस्करण	५००० प्रतियाँ
मुद्रक	राधा प्रेस, गान्धीनगर, दिल्ली-११००३१

SANSKRITIK KAHANIYAN—Part X

—Sudarshan Singh 'Chakra'

मूल्य — दो रुपया मात्र

प्राक्कथन

अनेक वर्षों तक 'कल्याण' (गोरखपुर) में मेरी कहानियाँ निकलती रहीं हैं। बहुत लोगोंका आग्रह था कि इन्हें संकलित कर दिया जाय। यह संकलन अब हो सका है और श्रीकृष्ण-जन्मस्थान प्रकाशनसे 'सांस्कृतिक कहानियाँ' नामसे अनेक भागोंमें निकल रहा है। अब तक १० भाग छप चुके हैं।

इस संग्रहमें 'कल्याण' में निकली कहानियाँ तो हैं ही, अन्यत्र छपी कहानियाँ भी हैं।

मैंने कहानी लिखना ही प्रारम्भ किया किसी तथ्यको समझानेके लिए। धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक विषयोंमें लेखोंके द्वारा जिन्हें समझाया जाता है, उन्हें मैंने कहानी द्वारा समझानेका प्रयत्न किया है।

इतिहास, भूगोल अथवा आधिदैवत जगतका भी वर्णन जो दिया गया है, यथासम्भव स्पष्ट है। इनसे भी पाठकको परिचित कराया गया है।

घटनाएँ और पात्र सभी कल्पित नहीं भी हैं— तो भी उनको सत्य बतलानेका प्रयत्न नहीं हैं। अतः घटनाओं तथा नामोंके पीछे मत पड़ें, कहानीमें प्रतिपादित तथ्यको ग्रहण करें।

कलाके लिए नहीं, सत्प्रेरणाके लिए लिखी गयी इन कहानियोंसे पाठकको लाभ हो तो मेरा प्रयत्न सफल है; भले कहानी-कला इनमें न मिलती हो।

अच्छा होगा कि इन कहानियोंके तीन भाग निकल जानेके बाद आप इन्हें मँगाया करें, इसमें डाक-व्यय कम लगेगा। नहीं तो आजकल डाक-व्यय पुस्तकके मूल्यसे अधिक हो गया है। अग्रिम भेजते समय आप जैसा लिखेंगे वैसी व्यवस्था कर दी जायगी।

श्रीकृष्ण जन्मस्थान, **—'चक्र'**
मथुरा

अनुक्रमणिका

मा फलेषु कदाचन

'आप यहाँ !' नगरका प्रतिष्ठित डाक्टर—वह डाक्टर जिसे स्नान-भोजनको ठिकानेसे समय नहीं मिलता, इस प्रकार अपनी जमी-जमाई चिकित्साकी दुकान छोड़-कर सुदूर देहातमें एक नन्हा-सा तंबू डालकर आ टिकेगा, इसकी कोई कैसे सम्भावना कर सकता है।

'मैं चिकित्सक हूँ—अतः इस समय मुझे यहाँ होना ही चाहिये था।' डाक्टर अवधेशजी चटपट उठ खड़े हुए। उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर आगन्तुकको नमस्कार किया।

केवल तीन रावटी पड़ी हैं। एकमें कम्पाउंडर तथा एक और सेवक है। एकमें डाक्टर साहबका अस्पताल है और उसीके पिछले भागमें उनके रहनेकी भी व्यवस्था है। तीसरा तंबू भोजनालयका काम देता है। उसीका एक भाग सामान रखनेके भी काम आता है।

'आप सरकारी चिकित्सक तो हैं नहीं।' आगन्तुक एक टीनकी कुर्सीपर बैठते हुए बोले—'नगरमें भी आप सेवा ही कर रहे थे। वहाँके रोगियोंको भी तो चिकित्सक चाहिये।' दो-तीन टीनकी कुर्सियाँ और एक छोटी मेज—जितने कम सामानमें काम चल सके, बस, उतना सामान डाक्टरके पास था। वैसे एक चिकित्सक होनेके कारण चिकित्सालयका ही सामान बहुत अधिक होना

स्वाभाविक था।

'नगरके रोगियोंकी सेवा करनेवाले पर्याप्त चिकित्सक वहाँ हैं।' डाक्टरने शीघ्रतापूर्वक अपना इंजेक्शन-का सामान ठीक करते हुए कहा। उनके पास रोगी आ रहे थे और उन्हें तुरन्त इंजेक्शन देना था—'सरकारी चिकित्सक पर्याप्त नहीं हो रहे हैं, यह आप देख ही रहे हैं। यह सरकारी चिकित्सकका ही कर्तव्य नहीं है। रोग जहाँ अदम्य बनता है, किसी भी चिकित्सक-का कर्तव्य वहाँ उसे पुकारता है।'

'तब आप मुझे भी अपना सहकारी बना लें।' आगन्तुकने किंचित् हँसते हुए कहा—'मैं भी तो चिकित्सक ही हूँ।'

'सच पूछिये वैद्यजी ! तो मैं स्वयं आपसे यह प्रार्थना करना चाहता था; किंतु हिचक रहा था।' डाक्टर अवधेश एक क्षण स्थिरदृष्टिसे वैद्यजीकी ओर देखते खड़े रहे···'हम अँधेरेमें ढेला फेंक रहे हैं। रोग नया है और उसकी कोई परीक्षित ओषधि अभी किसी-के पास है नहीं; किंतु रोग संक्रामक है और अत्यन्त उग्र भी। किसी मित्रको ऐसे स्थानपर रहनेको कहना··· वैसे सम्भव है कि आयुर्वेदकी सहायता कुछ कर सके।'

'रोग तो हमारे लिए भी नया है; किंतु आयुर्वेदकी पद्धतिमें कोई रोग नया नहीं होता।' वैद्यजी गम्भीर हो गये—'और रोगके संक्रामक तथा उग्र होनेका भय तो जैसा मेरे लिए है, वैसा ही आपके लिए भी है।'

एक ही शिविरमें—उसी दिन दो अच्छे चिकित्सक

एक साथ कार्य करने लगे। यद्यपि दोनोंकी पद्धतियोंमें कोई ऐक्य नहीं था, किंतु चिकित्सकमात्र—भले वे किसी पद्धतिके हों...सब एक स्थानपर एक हैं, सबका लक्ष्य रोगको दूर करके रोगीके कष्टको घटाते हुए मिटा देना है।

× × ×

भारतमें पहली बार प्लेग आया था। कोई औषधि तबतक आविष्कृत नहीं हुई थी। अनेक घर सूने हो गये। गाँव-के-गाँव उजड़ गये। ज्वर, गिल्टी और मृत्यु—जैसे मृत्युने अपना भयानक पंजा चारों ओर फैला रक्खा था और प्राणियोंको शीघ्रतापूर्वक समेटे ले रहा था—ठीक इस प्रकार जैसे क्षुधार्त बंदर दोनों हाथों बिखरे चने उठा-उठाकर मुखमें भरता है।

'अमुकको ज्वर आ गया है।' समाचार अकेला नहीं आता था—'उसके लड़केको गिल्टी निकल आयी है। उसके भाईकी दशा बिगड़ रही है। पड़ोसके मकानमें अमुक मर गया। उसका शव उठानेवाला कोई नहीं है।'

न डाक्टरको अवकाश था, न वैद्यजीको। किसी-को दवा दी, किसीको इंजेक्शन। किसीको पुल्टिस बाँधी, किसीको चूर्ण फँकाया। न स्नानका ठीक समय, न भोजनका।

बात यहीं तक नहीं थी। चिकित्साके अतिरिक्त मृतकोंको गङ्गा पहुँचानेका भी प्रश्न था और नित्य नहीं

तो, दूसरे-तीसरे ऐसा अवसर आता ही था कि वैद्यजी और डाक्टर साहब, दोनों ही शवको कन्धा लगाये गङ्गातट चले जा रहे हैं। वैसे यह कार्य उनके कम्पाउंडर, रसोइया तथा नौकरको अधिक करना पड़ता था और जब वे अपना कार्य छोड़कर कोई मृतक लेकर चल देते तो वैद्यजी चूल्हा फूँकते दीख पड़ते और डाक्टर साहब कम्पाउंडरका स्थान भी ले लेते।

'आज चपरासीको ज्वर आ गया है।' यह होगा, पहलेसे जानी-समझी बात होनेपर भी जब हुई—बहुत भयानक लगी। वैद्यजीने डाक्टर साहबसे कहा—'कम्पाउंडर, रसोइया, आप और मैं·····' आगे बोला नहीं गया उनसे।

'हम सभी खतरेमें हैं।' डाक्टरने बिना हिचके कहा—'मैंने सबसे यह बात पहले ही बता दी है और रसोइया या कम्पाउंडर अपने घर जाना चाहें तो मैं उन्हें प्रसन्नतासे छुट्टी दे दूँगा। मेरी प्रार्थना मानें तो आप भी ········ ···।'

'मैं दूसरी बात कह रहा था।' वैद्यजी बीचमें बोल उठे·· 'न कम्पाउंडर जायगा इस प्रकार और न रसोइया। इनके बिना आपका काम भी नहीं चल सकता। लेकिन मैं ठहरा वैद्य, मुझे किसी कम्पाउंडर, चपरासी, रसोइयेकी आवश्यकता नहीं होती। मैं दवा भी घोट लेता हूँ, रोगी भी देख लेता हूँ और अपने लिए दो टिक्कर भी ठोंक लेता हूँ।'

'तो यह कहिये कि आपकी नीयत अच्छी नहीं है।' डाक्टर खुलकर हँस पड़े—'आप यहाँसे हमें भगा देना चाहते हैं। यह क्यों भूलते हैं आप कि यहाँ आप हमारे अतिथि होकर आये और अब भी उसी स्थितिमें हैं।'

'तो आप इस ब्राह्मण अतिथिको अपना यह आवास दान कर दीजिये।' वैद्यजी भी हँसे—'अपने संगी-सेवक लेकर नगरका मार्ग देखिये।'

'आपने ठीक यजमान नहीं चुना' डाक्टरने उसी विनोदके स्वरमें उत्तर दिया—'मुझमें इतनी श्रद्धा नहीं है।'

'तब मुझे यमराजको यजमान बनाना पड़ेगा।' वैद्यजी गम्भीर हो गये ; किंतु किसीके भी नगर लौटनेकी चर्चा यहीं समाप्त हो गयी।

× × ×

'वैद्यजी मैं निराश हो चला हूँ।' अन्ततः एक रात—आधीरातके बीत जानेपर जब डाक्टर अपने बिस्तरेपर लेटे, उन्होंने समीपके बिस्तरपर लेटे वैद्यजीसे कहा—'हम न रोगियोंको बचा पाते हैं और न उनका कष्ट ही कुछ कम कर पाते हैं। उलटे हमने अपने आश्रितोंके प्राण भी संशयमें डाल रक्खे हैं।'

'वे जाना चाहें—आग्रह करनेपर भी चले जायँ तो उन्हें सबेरे ही भेज दीजिये।' वैद्यजी डाक्टर साहबके

शिविरमें, उनकी ही रावटीमें रहने लगे थे, यह तो कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है। वे कह रहे थे—'मैं आपकी रसोई भी बना दूँगा और पूरा नहीं तो भी, कुछ काम कम्पाउंडरका भी कर दूँगा आपके।'

'लेकिन इससे लाभ ?' डाक्टरका स्वर खिन्न था।

'लाभ ?' वैद्यजी झटकेसे उठ बैठे अपने बिस्तरेपर—

'आप इसमें कुछ लाभ नहीं देखते ? नगर लौट जानेकी इच्छा हो रही है क्या ?'

'मैं अकेला कहाँ जा रहा हूँ।' डाक्टर और खिन्न हो गये थे—'आपको साथ लेकर जाना चाहता हूँ।'

'देखो अवधेश !' इस बार वैद्यजी मित्रताके स्तर-पर आ गये—'मैं प्रारम्भसे आग्रह कर रहा हूँ कि तुम नगर चले जाओ। अपने सेवकोंको और इन शिविरोंको भी ले जाओ। मुझे इनमें-से किसीकी आवश्यकता नहीं। मैं सबेरे ही जमीदारकी खाली छावनीके बैठकमें डेरा डालूँगा।'

'करेंगे क्या आप ?' डाक्टर भी उठकर बैठ गये।

'दवा घोटूँगा। रोगी देखूँगा। उन्हें दवा दूँगा। आश्वासन दूँगा।' वैद्यजीके स्वरमें विनोदका लेश नहीं था—'और किसी मृतकको उठानेवाला कोई न हुआ तो इतनी शक्ति इस शरीरमें भगवान्ने कृपा करके दी है कि अकेले उसे कन्धेपर उठाकर गङ्गाजीमें विसर्जित कर आऊँ।'

'इससे क्या लाभ ?' डाक्टरने फिर पूछा—'मेरी

ओषधियोंके समान आपकी ओषधियाँ भी प्रभावहीन सिद्ध हो रही हैं, यह तो आप देख ही रहे हैं।'

'ओषधियाँ चुननेमें हम प्रमाद नहीं करते' वैद्यजी अत्यन्त गम्भीर हो गये थे—'हमारी जितनी योग्यता है, जितना ज्ञान है, उसका कोई भाग हमने छिपाया नहीं है और यही हम कर सकते हैं। ओषधि लाभ करें ही, यह तो न मेरे बसकी बात है, न आपके। इसमें उद्विग्न होनेकी क्या बात?'

'निष्फल उद्योग और वह भी खतरा उठाकर' डाक्टरने वैद्यजीको समझानेके स्वरमें कहा।

'उद्योग कर्तव्य है, इसलिए किया जाता है।' वैद्यजी इस बार तनिक जोशमें आ गये—'आपकी चिकित्सा-पद्धतिकी बात आप जानें; किन्तु आयुर्वेद तो आस्तिक शास्त्र है। प्रारब्ध तथा ईश्वरीय विधानमें आयुर्वेदको पूरा विश्वास है। हम विश्वास करते हैं कि जिसे जितना कष्ट प्रारब्धानुसार मिलना है—मिलकर रहेगा। निश्चित मृत्यु कोई टाल नहीं सकता।'

'तब भी आप चिकित्सा करते हैं' डाक्टरने व्यंग किया।

'सो तो करता हूँ और यहाँकी चिकित्सा छोड़नेको प्रस्तुत नहीं।' वैद्यजीका स्वरका स्थिर-दृढ़ था—परिणाम अपने वशमें नहीं है, अतः उसका प्रभाव अपने उद्योगपर क्यों पड़ने दिया जाय।'

'इस उद्योगका प्रयोजन?'

'कर्तव्य-पालन' वैद्यजी कह रहे थे—'रोगीको

आश्वासन मिलता है। हममें दया, मैत्री, करुणा, सेवा-भावका संचार होता है। प्रमादको प्रश्रय नहीं मिलता। सेवाका सात्विक आनन्द, रोगीको आश्वासन एवं कर्तव्य-पालनका पुण्यमय आत्मप्रसाद— इससे महान् और कोई पुरस्कार आपको सूझता है।'

'आप मेरे गुरु !' डाक्टर साहबने उठकर भाव-विभोर होकर वैद्यजीके चरण पकड़ लिये।

'स्वस्तिरस्तु' वैद्यजी हँसे—'ब्राह्मणकी चरण-वन्दना करना आपको आया तो सही।'

'चिकित्सकका ठीक कर्तव्य सुझाया आपने।' डाक्टर परिहास-ग्रहण करनेकी मनोभूमिमें इस समय थे नहीं।

'चिकित्सकका ही नहीं—मनुष्यमात्रका ब्राह्मणको छोड़कर मानव-कर्तव्यका निर्देष्टा कोई है भी तो नहीं।' वैद्यजी इस चर्चाको समाप्त कर देना चाहते थे—'किसी भी क्रियाका फल कर्ताके वशमें नहीं है। वह है भाग्य-विधाताके हाथमें। तब फलमें आग्रह करके अपने कर्तव्य-को, जिसमें हमारी स्वतन्त्रता है, कुण्ठित क्यों होने दिया जाय।'

मा कर्मफलहेतुर्भूः

'आप रक्षा कर सकते है—आप बचा सकते हैं मेरे बच्चेको।' वह वृद्धा क्रन्दन कर रही थी। 'आप योगी हैं। आप महात्मा हैं। मेरे और कोई सहारा नहीं है।'

उस वृद्धाका एकमात्र पुत्र रोगशय्यापर पड़ा था। आज तीन महीने हो गये, कुछ पता नहीं चलता कि उसे हुआ क्या है। उसे भूख लगती नहीं, मस्तकमें भयंकर पीड़ा होती है। पड़े-पड़े कराहता तो क्या, आर्तनाद किया करता है।

वृद्धाके और कोई नहीं। उसके बुढ़ापेका सहारा उसका यह युवा पुत्र—इसी वर्ष उसका द्विरागमन होना था—अब क्या होगा ? वैद्य-हकीम सभी तो कर लिये। घरमें जो कुछ था—गहने ही नहीं, बर्तन तक बिक गये। जिसने जो बताया, वही किया ; किंतु रोग है कि बीससे उन्नीस होनेका नाम नहीं लेता।

झाड़-फूँक, टोने-टोटके, यन्त्र-मन्त्र—कुछ बाकी नहीं। दुखी पुरुष इधर-उधर हाथ मारता है। बेचारी वृद्धा बहुत ही दुखी—अत्यन्त आर्त है। पता नहीं, किसके-किसके उसने पैर पकड़े हैं। आज सुना कि बंदा बैरागी आये हैं तो दौड़ पड़ी। उसने सुना है कि बंदा योगी हैं।

गुरुने अपना तेज दे दिया है बंदाको। वे महापुरुष हैं। अकाल पुरुषकी ज्योति उनमें उतरी है। वे अत्यन्त दयालु हैं, तब क्या उसपर दया पर नहीं करेंगे।

बंदाके पास पहुँचकर वह सीधे उनके पैरोंपर गिर पड़ी। दोनों हाथोंमें उनके पैर पकड़कर लिपट गयी। जबतक महापुरुष कृपा नहीं करेंगे, वह उनके पैर नहीं छोड़ेगी।

'माँ!' बंदा चौंक पड़े। उन्होंने बड़ी कठिनाईसे वृद्धाको अपने पैरोंपरसे उठाया। वृद्धाने रोते हुए कहा—'मेरा बेटा मरणासन्न है; आप आशीर्वाद दें, वह अच्छा हो जाय। आपके आशीर्वादसे वह अवश्य रोगमुक्त हो जायगा।'

'मैं क्या आशीर्वाद दूँगा। मेरे पास तो न कोई सिद्धि है, न तपस्याकी शक्ति और न पुण्य।' बन्दाने समझानेका प्रयत्न किया। 'कुछ कार्य मेरे द्वारा होता भी है तो वह परम पुरुषकी कृपा और गुरुकी प्रेरणासे। मैं कौन होता हूँ। जिसकी शक्ति कार्य करती है, कार्यके फल उसके।'

'आप एक चिटकी भस्म दे दें!' बुढ़िया इस समय उपदेश सुनने-समझनेकी स्थितिमें नहीं थी। वह गिड़गिड़ा रही थी।

'जैसी जगदम्बाकी आज्ञा!' बन्दा अत्यन्त गम्भीर हो उठे। उन्होंने उस बुढ़ियाको मस्तक झुकाया—'आप जगदम्बा ही तो हैं। बच्चेसे जो कराना हो, करा लें।'

और बन्दाके अनुचरोंने देखा कि उनका वह प्रसिद्ध सेनानी, आततायियोंका चमत्कारी मूर्त आतङ्क आज सचमुच एक बैरागी बन गया है। एक साधुकी गम्भीरता-से बंदाने बृद्धाके पैरोंके पाससे ही एक चिटकी धूलि उठायी, उसे मस्तकतक ले गये, एक बार दृष्टि आकाश-की ओर गयी और वह धूलि उन्होंने बृद्धाके हाथपर रख दी।

'मेरा बेटा अब जी जायगा!' बुढ़िया उल्लास-पूर्वक उठ खड़ी हुई। उसने नहीं देखा कि बन्दाके नेत्र भर आये हैं। 'तुम्हारी तपस्या पूरी हो। तुम अकाल पुरुषके प्यारे बनो!' आशीर्वादोंकी वर्षा करती वह लौट पड़ी अपने घरकी ओर।

× × ×

'सूबेदारकी सेना आ रही है। लगता है उसे आपके यहाँ होनेका पता लग गया है। बहुत बड़ी सेना है।' एक घुड़सवार सिख घोड़ा दौड़ता आया था। कुछ दूर ही घोड़ेसे वह कूद पड़ा और बन्दाके सामने आकर मस्तक झुकाकर खड़ा हो गया। उसका घोड़ा पसीनेसे लथपथ हो रहा था। मुखसे झाग गिरा रहा था। स्पष्ट था कि वह पर्याप्त दूरीसे अत्यधिक वेगपूर्वक दौड़ाया गया है और उसे बीचमें तनिक भी दम नहीं लेने दिया गया है।

'हमारे साथ इस समय केवल पचीस सैनिक हैं।'

बन्दाके समीप खड़े, सुदृढ़काय, विशालदेह पुरुषने बंदाकी ओर देखा—'आप आज्ञा करें तो हमलोग अब भी पर्वततक पहुँच सकते हैं।'

'छिः !' बन्दाके नेत्रोंमें चमक आयी। 'अपने प्राणोंके मोहसे बैरागी इन ग्रामीणोंको भेड़ियोंकी कृपापर छोड़कर भाग जायगा ? तुम्हें भय लगता है ?'

'धीरसिंह कभी डरा नहीं है !' उस भीमकाय पुरुषके नेत्र भी कठोर हुए और उसने अपनी मूँछोंपर हाथ फेरा—'आप सुरक्षित निकल जायँ तो हमारा नेता ही नहीं, हमारा भाग्य सुरक्षित हो गया। मेरे साथ चार सैनिक छोड़ दीजिये, मैं इन आनेवाले कुत्तोंसे सुलझ लूँगा।'

'अकाल पुरुषके हाथोंमें हम सबका भाग्य सुरक्षित है।' बन्दाने कवच धारण करते-करते कहा। 'बैरागी अपने मित्रोंको शत्रुके बीच छोड़ जायगा, ऐसी आशा तुम उससे नहीं कर सकते !'

'सूबेदारकी सेना आ रही है हमें लूटने और बैरागीने तलवार उठा ली है।' अच्छा बड़ा ग्राम था—साधारण कस्बा। बात फैलते देर नहीं लगी। पंजाबी युवकका रक्त कभी शीतल नहीं रहा है और इस समय तो बहती गंगामें हाथ धोना था—'बन्दा बैरागीका साथ देनेका हमें सौभाग्य मिला है। बैरागी—महाकाली खप्पर लिये युद्धमें जिनके आगे चलती हैं।'

पूरे पंजाबमें बन्दा बैरागी अतिमानव—लोकोत्तर

चमत्कारी महापुरुष माने जाते थे। वे पराजित भी किये जा सकते हैं, यह बात कोई सोचतक नहीं सकता था। शत्रु-सेना पाँच सौ है, पाँच हजार है या पचास हजार है—कोई सोचना नहीं चाहता। विजय तो बैरागीके चरणोंमें रहती है। उनके नेतृत्वमें शस्त्र उठाकर यशका लाभ ही तो लेना है।

'धीरसिंह !' अपने घोड़ेपर बठते-बैठते बन्दाने सहचरको सम्बोधित किया—'हमारे पास केवल पचीस सैनिक नहीं हैं।'

'मैं आपके नामका प्रताप समझता हूँ।' धीरसिंहने देखा कि हल पकड़नेवाले हाथ अब भाला या तलवार उठाये हैं। ग्रामीण तरुणोंकी संख्या बढ़ती जा रही है। वृद्धतक दौड़े आ रहे हैं।

'प्रताप तो सर्वत्र परमात्माका !' बन्दाने किसी अलक्ष्यके प्रति मस्तक झुकाया। 'मिट्टीके किसी पुतले-का प्रताप क्या हो सकता है। तुम इन नवीन सैनिकोंको सँभाल लोगे ?'

'जैसी आपकी आज्ञा !' धीरसिंहने ग्रामीण तरुणों-को परिस्थिति समझायी और व्यूहबद्ध करना प्रारम्भ किया। इतना अनुशासन—कोई दीर्घकालीन सुशिक्षित सेना भी चकित रह जाय ; क्योंकि धीरसिंह कह रहे थे—'आप सबके सेनापति इस समय बन्दा बैरागी हैं—महायोगी बैरागी। आपको उनकी आज्ञाके एक-एक अक्षरका पालन करना है।'

'हम पालन करेंगे !' बैरागीकी आज्ञा तो परमात्मा-

की आज्ञा है। उसे अस्वीकार कोई कैसे कर सकता है।

पता नहीं था कि शत्रु किधरसे आक्रमण करेगा, वह ग्रामपर घेरा डालेगा या सीधे घुस पड़ना चाहेगा; किंतु बैरागीने शत्रुकी संख्या या उसके व्यूहकी अपेक्षा कब की है। उनका अश्व जैसे वायुमें उड़ रहा था। उनके आदेश यन्त्रकी भाँति उनके सैनिक–ग्रामीण पालन कर रहे थे। घड़ीभरमें तो गाँवसे एक कोस दूर-तक चारों ओर मोर्चा जम गया। वृक्षोंके शिखर, ऊँचे टीले, गहरे खड्ड—सब कहीं बैरागीके सैनिक सावधान बैठ चुके थे और मैदानमें बन्दाके साथ चुने हुए दस घुड़सवार धूलि उड़ाते दौड़ लगा रहे थे।

× × ×

सचमुच विजय बन्दा बैरागीके चरणोंके पीछे चला करती है। शत्रुका सैन्यदल ठीक कितना था, पता नहीं—पाँच हजारसे अधिक ही होगा। बैरागीके पास सैनिक कुल पचीस थे; और ग्रामीणोंको भी गिन लें तो पाँच सौसे अधिक नहीं। किंतु युद्ध कठिनाईसे तीन घन्टे चला होगा।

सेना सूबेदारकी ही थी; किंतु वह न बैरागीको पकड़ने आयी थी न उनसे युद्ध करनेको प्रस्तुत थी। वे लोग तो आये थे—गाँवके निरीह लोगोंको लूटने—काफिरोंको कत्ल करके गाजी बनने, साथ ही जेबें गरम करने और हो सके तो कोई सुन्दर-सी लड़की ले जाने!

उनके सनिककोंके भाव इसी प्रकारके थे। सिरका सौदा करनेको उनमें कोई तैयार नहीं था। बैरागीसे सामना हो जायगा, यह उन्हें पता होता तो इधर कदम रखनेकी भूल वे कर नहीं सकते थे।

'अल्लाहो अकबर !' की पुकार करती आततायियोंकी समुद्र-सी उमड़ती वह सेना; किंतु उसने सुना—'सत् श्रीअकाल !' 'वाह गुरुकी फतह !' 'बन्दा बैरागीकी जय !' और उनके मुखोंसे 'अल्लाहो अकबर!' बन्द हो गया। वे 'या खुदा! या अल्लाह !' चिल्लाने लगे।

'बन्दा वैरागी—शैतानका फरिश्ता यह काफिर !' हवाइयाँ उड़ने लगी शत्रु-सैनिकोंके मुखपर—'शैतान इसके तीरोंको सौगुना कर दिया करता है। मल्कुल मौत इसके साथ दौड़ती है।'

सचमुच मौत दौड़ रही थी बन्दाके अश्वके साथ। उनका अश्व जिधरसे निकल जाता था, उनके बाणोंकी बौछार उधर भूमिको लाशोंसे ढक देती थी।

'बैरागी आ गया ! कयामत उतर आयी उसके साथ !' बहुत शीघ्र शत्रुके पैर उखड़ गये। अपने घायलों तकको कराहते छोड़कर वे भागे और भागते चले गये। उन्हें बन्दा नहीं, बन्दाका भय खदेड़े चला जा रहा था; क्योंकि भागते शत्रुको तो न बैरागी कभी खदेड़ते न उनपर चोट करते।

× × ×

'आपकी कृपासे हमने विजय प्राप्त की!' बन्दा युद्धसे लौटे थे और अपने सदाके नियमके अनुसार वे किसी पर्वतपर अकेले ध्यान करने जाना चाहते थे। धीर-सिंहने आग्रह किया—'शत्रुसे छीनी सामग्रीके वितरण-का तो आप आदेश दे जायँ।'

'आप साक्षात भगवान् हैं! आपने मेरे पुत्रको जीवित कर दिया!' सहसा वृद्धा आ गिरी बैरागीके चरणोंपर। उसके साथ आया था उसका पुत्र। अब भी वह बहुत दुर्बल था, किंतु उसके मुखपर आरोग्यकी चमक आ चुकी थी।

'माता, परमात्माको धन्यवाद दो! तुम्हारे पुत्रको उस दयामयने अच्छा किया है।' बन्दा बैरागीने धीर-सिंहकी ओर मुख किया—'और भाई तुम भी। विजय उस प्रभुकी हुई और उसीकी शक्तिसे हुई।'

'फल हुआ—वह प्रभुकी कृपा, उनका प्रसाद।' बैरागी अश्वपर बैठते बोले—'उसे अपने कर्मका फल मानकर पूरे कर्मका उत्तरदायित्व क्यों सिरपर लेते हो। अपनेको—कर्मफलका कारण कभी मत बनाओ, फलको भगवान्पर छोड़ दो। कोई कर्म तुम्हें बाँध नहीं सकेगा।'

बैरागीका अश्व उड़ चला। विजयमें प्राप्त श्रेय तथा सम्पत्ति न कभी वे लेते थे, न उसकी व्यवस्थाका आदेश करते थे। वे वीतराग···

मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि

'जीवनका उद्देश्य क्या है ?' जिज्ञासा सच्ची हो तो वह अतृप्त नहीं रहती। भगवान्‌की सृष्टिका विधान है कि कोई भी अपनेको जिसका अधिकारी बना लेता है, उसे पानेसे वह वञ्चित नहीं रखा जाता।

'आत्मसाक्षात्कार या भगवत्प्राप्ति ?' उत्तर तो एक ही है। यही उत्तर उसे भी मिलना था और मिला—'यह तो तुम्हारे अधिकार एवं रुचिपर निर्भर करता है कि तुम किसको चुनोगे। यदि तुम मस्तिष्कप्रधान हो तो प्रथम और हृदयप्रधान हो तो द्वितीय।'

वह राजपूत है—सच्चा राजपूत और यह समझ लेना चाहिये कि सच्चा राजपूत लगनका सच्चा होता है। वह पीछे पैर रखना नहीं जानता—किसी क्षेत्रमें बढ़नेपर। सौभाग्यसे पिता साधुसेवी थे और सत्सङ्गने उसे सिखा दिया था कि संसारके भोग तथ्यहीन हैं, उनमें सुखकी खोज चावलके लिये तुस कूटने जैसा है।

'परमार्थका मार्ग तो वह दिखला सकता है, जिसने स्वयं उसे देखा हो।' उसका निर्णय आप भ्रान्त तो नहीं कह सकते। कोई भी मार्ग वही दिखा बता सकता है, जो उसपर चला हो। सुन-सुनाकर बतानेवाले भूल कर सकते हैं। किसीकी भूलसे जब पूरे जीवनके भटक जानेकी

आशङ्का हो, ऐसा भय कौन आमन्त्रित करे। उसने निश्चय किया—'समर्थ स्वामी रामदासके श्रीचरण ही मेरे आश्रय हो सकते हैं।'

कहाँ ढूँढ़े वह श्रीसमर्थको। उन दिनों वे कहीं टिककर रहते नहीं थे। उन्होंने देश-भ्रमण प्रारम्भ कर दिया था। यह ठीक है कि वर्ष-दो-वर्षमें वे 'सातारा' आ जाते थे; किंतु जीवनके साथ जुआ तो नहीं खेला जा सकता। जीवन वर्ष-दो वर्ष रहेगा ही—मृत्यु कल ही धर नहीं दबायेगी, इसका आश्वासन ?

'स्वामी ! मैं आपके समीपसे उठनेवाला नहीं हूँ !' उसने श्रीपवनकुमारके श्रीविग्रहके चरणोंके पास आसन लगाया। 'श्रीसमर्थ आपके हैं, मैं उन्हें कहाँ ढूँढ़ने जा सकता हूँ।'

बात सच थी, संत ढूँढ़नेसे मिलते होते तो देवर्षि नारद अपने भक्तिसूत्रमें न कहते—

'लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव' (४०)

किंतु उन्होंने ही यह भी तो कहा है—

'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्।' (४१)

श्रीमारुतिके चरणोंमें पहुँची आर्त पुकार कभी निष्फल नहीं लौटी है। इस बार भी उसे नहीं लौटना था। पता नहीं कहाँसे घूमते हुए श्रीसमर्थ आ पहुँचे और किसी ग्राम या नगरमें पहुँचनेपर वे पहले वहाँके श्रीमारुति मन्दिरमें प्रणाम करने पहुँचेंगे, यह तो निश्चित ही रहता है।

'मैं तुम्हें ढूँढ़ने आया हूँ।' श्रीसमर्थने पवनकुमारको साष्टाङ्ग प्रणिपात किया और अपने पदोंमें प्रणत उस

राजपूत युवकको उठा लिया।

'कृपामय न ढुँढ़े तो अज्ञ असमर्थ जन उन्हें कहाँ कैसे प्राप्त कर सकता है।' युवकके नेत्रोंसे अश्रु झर रहे थे।'

'तुम इस प्रकार यहाँ क्यों बैठे हो ?' समर्थकी ओज-पूर्ण वाणी गूँजी। 'तुम्हारे-जैसे समर्थ तरुणोंकी सेवा आज जनतारूपमें विद्यमान श्रीजनार्दन माँग रहे हैं।'

'मनुष्य-जीवन बार-बार प्राप्त नहीं होता, यह आप महापुरुषोंसे ही सुना है।' युवक अपनी जिज्ञासापर आ गया था। 'आप कृपा करें! यह जीवन आपकी कृपाकोर प्राप्त करके कृतकृत्य हो जायगा।'

'श्रीरघुवीर समर्थ अनन्त करुणावरुणालय हैं।' समर्थ स्वामी अभय दे रहे थे। कृपाकी क्या कृपणता है वहाँ! उनके श्रीचरणोंसे कृपाकी अजस्र स्रोतस्विनीं त्रिभुवनको आप्लावित करती झर रही है। तुम अपनेको उन श्रीचरणोंमें अर्पित तो कर दो।'

× × ×

'मुझे आज्ञा दें प्रभु!' वह युवक अब एक आश्रम-का मुख्य प्रबन्धक था। अब वह साधु है—समर्थका साधु। समर्थके साधुका अर्थ है—दीनोंका सेवक, रोगियोंका उपचारक एवं पीड़ितोंका मूर्तिमान् आश्वासन, किंतु वह स्वयं आज आर्त्त हो रहा है। श्रीसमर्थकी प्रतीक्षा कर रहा है वह गत दो महीनोंसे और आज जब उसके गुरुदेव पधारे हैं, वह उनके श्रीचरणोंपर गिर पड़ा है।

'तुम बहुत उद्विग्न दीखते हो!' श्रीसमर्थने आसन

स्वीकार कर लिया था।

'अपनेको अयोग्य पाता हूँ मैं इस आश्रमके लिए।' वह खुलकर रो पड़ा। 'श्रीचरण आज्ञा दें तो एकान्तमें कुछ दिन प्रयत्न करूँ।'

'कौन-सा प्रयत्न करोगे तुम!' समर्थ स्वामीके मुखपर स्मित आया—अपार वात्सल्यपूर्ण स्मित।

'मनकी चञ्चलताको रोकनेका प्रयत्न?' युवकने उत्तर दिया। 'श्रीचरणोंने ही आदेश किया था कि नैष्कर्म्यकी सिद्धि ही आत्मदर्शनका उपाय है।'

'उपाय नहीं—नैष्कर्म्यसिद्धि तथा आत्मदर्शन एक ही बात है।' श्रीसमर्थने संशोधन किया। 'किन्तु नैष्कर्म्यका तुम सम्पादन कैसे करोगे? कर्मका त्याग करके?'

'यदि प्रभु आज्ञा दें!' युवकने अपना मन्तव्य स्पष्ट किया। 'आश्रममें रहकर तो नित्य कार्यव्यग्र रहना ही पड़ता है।'

'एकान्तमें जाकर तुम श्वासक्रिया बन्द कर दोगे?' समर्थ समझानेके स्वरमें बोल रहे थे। 'आहार एवं जल भी तथा शरीरस्थ यन्त्रोंकी क्रियाओंको भी? यदि यह कर भी लो तो उस पत्थरमें और तुममें अन्तर क्या होगा?'

'प्रभु!' युवक अपने मार्गद्रष्टाके चरणोंपर गिर पड़ा। उसे लगा कि कोई घने अन्धकारका पर्दा उसके सम्मुख पड़ा था और अब वह उठने ही जा रहा है।

'आत्मतत्त्व अक्रिय है। उसकी अनुभूति—समस्त क्रियाशीलताके मूलमें जो एक निष्क्रिय सत्ता है, जिसमें

क्रिया आरोपितमात्र है, उससे एकत्वका अनुभव।'

सहसा श्रीसमर्थ रुक गये। उन्होंने देखा कि उनका यह अनुगत इस पद्धतिको हृदयंगम नहीं कर पा रहा है। उन्होंने दिशा बदली—'क्रियाके संचालक एवं उसके फलके दाता-भोक्ता श्रीरघुवीर हैं। हम-तुम सब उन समर्थ-के हाथके यन्त्र हैं। हमें उनके चरणोंमें अपने-आपको पूर्णतया अर्पण कर देना है।'

'श्रीचरणोंमें मैंने अपनेको उसी दिन अर्पित कर दिया।' युवकके स्वरमें विश्वास था।

'यन्त्र तो नित्य निष्क्रिय है। उसकी क्रिया तो संचालककी क्रिया है।' श्रीसमर्थने वह अज्ञानकी अन्ध-यवनिका उठा दी। 'सचमुच तुमने अपनेको अर्पित कर दिया है तो नैष्कर्म्य स्वतः प्राप्त है। मनके चाञ्चल्यके निग्रहके कर्ता बननेकी इच्छा तुममें क्यों आती है?'

'यह अशान्ति—उस आनन्दघनकी अनुभूति जो नहीं पा रहा हूँ।' बात सच है। यदि आन्तरिक शान्ति और आनन्द नहीं मिलता तो अवश्य हमसे भूल हो रही है, हमारे साधनमें कहीं त्रुटि है।

'अपनेको कर्ता मानना छोड़ दिया होता तुमने!' वह त्रुटि जो स्वयं साधक नहीं पकड़ पाता, उसका मार्ग-द्रष्टा सहज पकड़ लेता है। श्रीसमर्थसे वह त्रुटि छिपी नहीं रह सकती थी। 'कोई पीड़ित नहीं, कोई रोगी नहीं, कोई संतप्त नहीं। तुम न उद्धारक हो, न सहायक। इन रूपोंमें आनन्दघन श्रीरघुवीर तुम्हारी सेवा लेने आते हैं

तुमपर कृपा करके। उनकी सेवा करके तुम कृतार्थ होते हो।'

युवकने भूमिपर मस्तक रखा और उसके वे गुरुदेव उठ खड़े हुए। उन्हें अब प्रस्थान करना था।

× × ×

'तुम जा सकते हो, यदि तुम्हें एकान्तमें जानेकी आवश्यकता प्रतीत होती हो !' श्रीसमर्थ स्वामी रामदास जब दूसरी बार उस आश्रमपर लौटे, स्वागत-सत्कार समाप्त हो जानेपर अपने चरणोंके पास बैठे आश्रमके प्रधानकी ओर उन्होंने सस्मित देखा।

'मुझसे कोई अपराध हो गया ?' प्रधानने मस्तक रखा श्रीचरणोंपर। अन्य आश्रमस्थ साधु सशङ्क हो उठे। उनके निष्पाप प्रधानने ऐसा क्या किया कि उन्हें दण्ड प्राप्त हो ? किसी अपने चरणाश्रित साधुको समर्थ स्वामी आश्रमसे पृथक् होकर एकान्त-सेवनका आदेश तभी देते हैं, जब वह कोई अक्षम्य अपराध करता है। यह तो उनका सबसे बड़ा दण्ड है।

'अपराधकी बात मैं नहीं कहता !' समर्थ स्वामी प्रसन्न थे। 'यह तो तुम्हारी आवश्यकताकी बात है। आन्तरिक शान्ति एवं निरपेक्ष आनन्दकी उपलब्धिके लिए यदि तुम्हें एकान्तकी आवश्यकता प्रतीत होती हो……।'

'श्रीचरणोंको छोड़कर मेरी और कोई आवश्यकता कभी न बने !' आश्रमके प्रधानका स्वर भाव-विह्वल हुआ। 'अज्ञानी आश्रितसे त्रुटि होती ही है और दया-धाम शरण्य उसे क्षमा करते हैं। सेवकको सेवाका प्रभुने सौभाग्य दे रखा है, उसे आनन्दका अभाव कैसे हो सकता है।'

'यही कहने इस बार मैं आया हूँ।' समर्थ रामदास स्वामीने एक दृष्टि समस्त शिष्यवर्गपर डाली। 'जो इस विश्वका निर्माता, संचालक एवं संरक्षक है, वह न दुर्बल है न असमर्थ। उसे हमारी सेवाकी आवश्यकता नहीं है। यह झूठा अहंकार है कि हम किसीकी सेवा करेंगे या हम लोकोपकार करेंगे।'

'तब हमारा यह आश्रम ·····।' एक नवीन साधु कुछ कहना चाहता था ; किंतु स्वयं उसे अपनी भूल ज्ञात हो गयी। समर्थ स्वामी बोलते जा रहे थे—

'उन प्रभुने हमें अपनी सेवा प्रदान की, यह उनकी कृपा। प्रत्येक जीवपर उनकी यह अहैतुकी कृपा है। सबको उन्होंने एक कार्य देकर यहाँ भेजा है और यदि अपने कार्यका वह ठीक सम्पादन करता है तो सर्वेशकी आराधना करता है। इसी आराधनासे वह उनकी प्राप्ति करता है।'

हमारा कर्तव्य

'अवश्य प्रत्येकको इसे समझनेमें कठिनाई होती है।' समर्थकी अमृतवाणी प्रवाहित होती रही। 'किंतु तुम्हें

क्यों कठिनाई होनी चाहिये ? तुममें बल है, शौर्य है, शस्त्रचालनकी निपुणता है। ये साधन तुम्हें समर्थ श्री-रघुवीरने दिये हैं। आसपास जो आर्त, अत्याचार-पीड़ित हैं, उनकी पुकार—वह प्रभुकी पुकार तुम्हारा कर्तव्य-निर्देश करती है।'

'कर्म करनेके तुम्हें साधन मिले हैं—अतः उनका उपयोग करो।' उपदेशका उपसंहार हुआ। 'कर्मका त्याग अर्थात् अकर्ममें आसक्ति करके तो तुम अपनेको उस सर्वात्माकी सेवासे वञ्चित कर लोगे।'

अकाम

'असंकल्पाज्जयेत् कामम्'

काम जानामि ते मूलं संकल्पात् सम्भविष्यसि ।
न त्वां संकल्पयिष्यामि ततस्ते प्रभवः कुतः ।।

जो उसे देखता है, देखता रहता है। यह आयु, यह सुन्दर शरीर और यह वेश ! यह कोई साधुवेश भी होता तो एक बात थी ; किंतु जब उसे इसी प्रकार रहना था तो साधु क्यों नहीं हो जाता ?

इकहरा गोरा शरीर, साँचेमें ढले-से अंग, उन्नत ललाट, पतले लाल अधर, बड़ी-बड़ी भावभरी आँखें और कोमल कलाकार-सी अँगुलियाँ । कठिनाईसे पच्चीस वर्ष पूरे किये होंगे । मैली आधी बाँहकी कमीज, खादी-की मैली कुछ फटी एक ही धोती, एक कम्बल, लोटा और गीताकी छोटी-सी पुस्तक—कुल इतना परिग्रह है उसके समीप ।

सिरके घुँघराले केश धूसर हो गये हैं, उलझ गये हैं और अस्त-व्यस्त तो रहते ही हैं। छोटी-सी दाढ़ी बढ़ आयी है। जिसे अपने शरीरको रगड़कर स्नान करके स्वच्छ करनेका ध्यान नहीं रहता, वह वस्त्र और केशों-का ध्यान कहाँतक रखेगा ।

शरीरका सौन्दर्य अपना एक आकर्षण रखता है—

महत्त्वपूर्ण आकर्षण। उसे बिना माँगे आग्रहपूर्वक भोजन करा देती हैं माताएँ, जहाँ वह बस्तीमें निकल जाता है। साधुवेश न होनेपर भी बहुत-से लोग उसे महात्मा मानकर अनेक बार उसके पीछे पड़े हैं।

'मैं साधु नहीं हूँ—मैं साधु होने योग्य भी नहीं हूँ!' वह थक गया है यह कहते-कहते; किंतु लोग तो अपनी मानता कहना जानते हैं। वे सुनना जानते ही नहीं। अतः वह कहीं टिकता नहीं, टिक पाता नहीं। एकसे दूसरे स्थानमें भटक रहा है।

'मैं साधु होने योग्य नहीं हूँ। अपने भीतर कामनाका कलुष लिये साधुवेश ले लूँ तो वेश कलंकित होगा। आपको और संसारको धोखा देना मुझसे बनेगा नहीं।' उसे शिष्य बनानेको तत्पर ही नहीं, समुत्सुक हुए अनेक—कई प्रसिद्ध और गद्दीधारी भी। इतना सुन्दर युवा, सुपठित शिष्य मिले तो कौन गुरु न बनना चाहे; किंतु वह शिष्य बननेको जो प्रस्तुत नहीं है।

उसमें श्रद्धा नहीं है, साधुवेशके प्रति आस्था नहीं है, यह किसीको कभी अनुभव नहीं हुआ; किंतु वह भी दूसरेकी कहाँ सुनता है? उसे भी अपनी ही धुन है और अब उसने किसी साधुके स्थानमें ठहरना बन्द कर दिया है। वहाँ उसका जो पहुँचते ही स्नेह-सत्कार होता है, उसका तात्पर्य वह जान गया है। किसीकी आशा पूर्ण करनेकी स्थिति अपनी न हो तो किसीको आशामें रखा ही क्यों जाय।

वह भटक रहा है, एकसे दूसरे स्थानमें भटक रहा है।

× × ×

'किसीको आशा क्यों बँधायी जाय !' बड़े कसक भरे भाव हैं। 'मेरा दोष ? अन्ततः कलुषकी परम्परा प्रस्थापित करनेसे संसारका क्या उपकार हो सकता है ?'

बात मुझे स्पष्ट कर देनी चाहिये ; क्योंकि उसकी कहानी आपको मैं बताने चला हूँ। वह सम्पन्न घरका है, सुशिक्षित है। पिताको उसने रोका था कि वह विवाह अभी नहीं करेगा ; किन्तु माताका मन—बहूका मुख देखनेकी उतावली माताको होती ही है। पिताने एक सम्बन्ध स्वीकार कर लिया और तब वह घरसे निकल भागा।

उसे विवाह नहीं करना है ? ऐसी बात तो नहीं है। किंतु पिताकी प्रेरणासे ही उसने रामायण पढ़ना प्रारम्भ किया था। गीता पढ़ता है। श्रीमद्भागवतकी कथामें भी उसे पिता ही ले गये थे।

पुत्रमें अच्छे संस्कार हों, वह सदाचारी एवं आस्तिक बने, इस प्रकार प्रयत्न करनेवाले पिताको आप दोषी नहीं कह सकते और उसका ही क्या दोष था। उसने कथा ध्यानसे सुनी और ग्रहण की। यह दोष तो नहीं है।

'सृष्टिके आदिमें भगवान् ब्रह्माने अपने पुत्रोंसे कहा—'सृष्टि करो !' और वे ब्रह्मपुत्र तपस्यामे लग गये।' कथावाचकजीने अपनी व्याख्यामें कहा था—'काम-कलुषित व्यक्तिकी संतान सृष्टिमें कलुष बढ़ावेगी, यह बात आदियुगके उन निसर्ग ज्ञानमूर्तियोंको समझाना आवश्यक नहीं था। अन्तःकरणकी शुद्धि प्रत्येक व्यक्तिकी प्रथम

आवश्यकता है और जितनी वह भगवत्प्राप्तिके लिए आवश्यक है, उतनी ही गृहस्थके लिए भी आवश्यक है।'

'काम-कलुषित व्यक्तिकी संतान संसारमें कलुष ही बढ़ावेगी।' यह बात उसने हृदयमें रख ली। एक कानसे सुनकर दूसरेसे निकाल नहीं दी। आप इसे उसका दोष मानें या गुण।

'कितनी निराशा हुई होगी उस कन्याके पिताको और उस भोली बालिकाको!' वह कम दुखी नहीं है; किंतु····कौन जाने इस हठधर्मीने, इस अपराधने ही उसके हृदयको और क्षुब्ध कर दिया हो। किसी निरपराध बालिकाकी अवमानना—अपराध तो है यह और यह सत्य है कि उसका चित्त घर छोड़नेके पश्चात् अधिक चञ्चल रहने लगा है। उसके मनके विकार—देहकी जितनी उपेक्षा वह कर लेता है, कहीं मनकी भी उतनी ही कर पाता।

× × ×

भगवती भागीरथीका पावन पुलिन, वटका सुमनोहर आश्रय। उसने नहीं देखा वटके समीपकी मढ़ियाको जिसमें दो भग्नप्राय मूर्तियाँ थीं शुकदेव—महर्षि शुकदेव एवं महाराज परीक्षित्की। उस समय शुकतालपर न आज-जैसा भव्य मन्दिर था, न आस-पास साधु-आश्रम एवं निवास-भिक्षाकी व्यवस्था। जंगल था आसपास—रात्रिमें वन्य पशु वटके नीचे आनन्दसे गुर्रा सकते थे।

किंतु उसमें यह सब देखने-समझनेकी शक्ति नहीं थी। वह गङ्गा-किनारे चलता आया और वट-वृक्षके नीचे गिर पड़ा।

गिर ही पड़ा था वह तीव्र ज्वरके कारण। उसका कम्बल सिरके नीचे पड़ा था। लोटा लुढ़क गया था और वह मूर्छितप्राय पड़ा था। सहसा मस्तकपर किन्हीं करों-का सुखद शीतल स्पर्श हुआ और उसने नेत्र खोले।

कोई ग्रामीण कन्या आ गयी थी उस ओर और उसके समीप बैठ गयी थी। मूर्छित अस्त-व्यस्त पड़े युवकके प्रति सहानुभूति उमड आयी थी उसके कोमल चित्तमें। वह झुकी पूछ रही थी—'पानी पिओगे भैया ?'

बडे-बड़े नेत्र, खिले कमलके समान मुख और धूलि-धूसर केशराशि—वह देखता रहा दो क्षण और फिर उसने नेत्र बंद कर लिये।

'मैं संकल्प नहीं करूँगा। मैं जानता हूँ कि काम संकल्पसे उत्पन्न होता है। मैं संकल्प करूँगा ही नहीं!' व्यर्थ बात—पिछले कई सप्ताहसे वह इस प्रयत्नमें विफल रहा है और आज—'बड़े-बड़े सुमनोहर नेत्र, विकच कमल-सा मुख और धूलिधूसर केशराशि……' मस्तक-पर मृदुल करोंका स्पर्श हो रहा है, संकल्प रोक देना क्या बहुत सीधी बात है।

'करुणामय ! पतितपावन !' वह लगभग चीख पड़ा और आप जानते हैं कि आर्तकी पुकार अनसुनी कर देनेकी शक्ति उस सर्वशक्तिमान्में भी नहीं है।

'सङ्गात्संजायते कामः' जैसे किसीने पूरे हृदयमें प्रकाशका विस्फोट कर दिया हो। मुझे लिखनेमें देर लगेगी—एकदम, एक साथ उसके चित्तमें आलोक फूट पड़ा—'काम उत्पन्न होता है आसक्तिसे। संकल्प ही रोक देना अशक्य है। संकल्पकी दिशा बदल देनी है। आसक्तिको दूर करके संकल्प करो न!'

'बहिन, पानी!' उसने नेत्र खोल दिये और वह कन्या उसका लोटा उठाकर भगवती भागीरथीका जल लेने झपटी।

'बड़े-बड़े सुमनोहर नेत्र, खिले कमल-सा परम सुन्दर मुख, धूलिभरी केशराशि!' यह उसने देखा ही नहीं, कहा भी और कहकर उन्मुक्त भावसे हँस पड़ा।

बात यह हुई कि वह कन्या जब जल लेकर लौटी और उसके कण्ठमें गङ्गाजल पहुँचा, तब ज्वरकी ज्वाला घट गयी। उसे अपनी ओर एकटक देखते देखकर उस ग्रामीण कन्याने संकोचपूर्वक पूछा—'क्या देखते हो?'

'देख रहा हूँ जगद्धात्री जगदम्बाको।' वह पहले गम्भीरतापूर्वक बोला—'जो जगन्माता प्रत्येक जीवका पालन करती हैं, वे ही करुणामयी आज अपने एक विपन्न पुत्रके समीप आ बैठी हैं।'

'क्या?' बालिकाकी समझमें कुछ नहीं आया। यह बात वह तत्काल समझ गया और तब हँसा।

'अपनी बहिनकी ये बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखें, कमलके समान खिला मुख और ये धूलिसे भरे बाल देख रहा हूँ।' वह हँसता हुआ बोला।

'तुम बड़े दुष्ट भाई हो।' वह भी हँस पड़ी। युवक-के नेत्रोंमें जो निष्कलुष भ्रातृत्व था, उसने उस सरला बालिकाको भी संकोचहीन कर दिया था; क्योंकि हृदय हृदयके सत्यको शीघ्र पहचान लेता है।

× × ×

अब कहनेको अधिक कुछ नहीं है। वह उस बालिका-के घर चला गया; क्योंकि बालिकाने अपने पिताको घर जाकर भेज दिया था उसे उठा लानेको और किसान-की सेवाने बहुत शीघ्र उसे स्वस्थ कर दिया।

आप आश्चर्य करेंगे, वह साधु नहीं बना। वह घर लौट गया उसकी आशा सफल करने, जिसकी आशा भंग कर आया था और उस किसानको अपनी पुत्रीके साथ उसके विवाहमें सम्मिलित होनेका आग्रह स्वीकार करना पड़ा।

अक्रोध

'क्रोधं कामविवर्जनात्'

हम सब उन्हें दादा कहते थे। सचमुच वे हमारे दादा—बड़े भाई थे। सगे बड़े भाई भी किसीके इतने स्नेहशील कदाचित ही होते हों। उनका ध्यान हम सबोंकी छोटी-से-छोटी आवश्यकतापर रहता था। किसे कब क्या चाहिये। किसे क्या-क्या साथ ले जाना चाहिये।

'तुम अपना झोला, बक्स और बिस्तर दिखलाओ तो सही।' हममेंसे कोई ही कभी दस-पाँच दिन निवास-स्थानपर रह पाता था। प्रायः यात्रा करनी थी। दादा भी रह नहीं पाते थे; किंतु दादा हों तो यात्राको उद्यत होनेवालेका बिस्तर बँध जानेपर वे अवश्य उसे खोलनेको कहते और फिर उनकी स्नेहभरी झिड़की—'पता नहीं तुम सबोंमें कब सावधानी और समझ आयेगी। न मार्गमें काम आनेको मिट्टी रक्खी, न दातोन और न कम्बल। जहाँ जा रहे हो, वहाँका मानचित्र तक साथ नहीं।'

वह कोई सुख-सुविधाका जीवन नहीं था। हमारे पास आवश्यक वस्त्र एवं बर्तनोंतकका प्रायः अभाव रहता था। जिसे सबसे अधिक आवश्यकता हो, कम्बल, चद्दर, लोटा उसका होना चाहिये। प्रायः प्रत्येकको

लगता कि दूसरोंको उससे अधिक आवश्यकता है। फलतः हमारी यात्राके समय दादाको बँधा सामान अपर्याप्त लगना ही था और दादाके लिए अपनी तो जैसे कोई आवश्यकता थी ही नहीं।

बात उन दिनोंकी है, जब देश स्वतन्त्र नहीं हुआ था। अंग्रेज सरकारका दमन-चक्र पूरे वेगपर था। उस समय देशमें कुछ ऐसे भी लोग थे, जिनका विश्वास अहिंसामें नहीं था। उन क्रान्तिकारियोंकी मान्यता ठीक नहीं थी, यह कहा जा सकता है; किंतु उनकी देश-भक्तिमें कहीं कुछ कमी थी, यह कहनेका साहस किसीको नहीं हुआ।

अभाग्यवश कहिये या परिस्थितिवश, देशके सभी क्रान्तिकारी दल एक संगठनमें कभी नहीं आ सके। यह असम्भव भले न रहा हो, अत्यन्त कठिन था। जितना सशंक, सतर्क एवं गुप्त उन्हें रहना था, उसे देखते हुए वे अनेक दलोंमें बिखरे रह गये, यह कोई अद्भुत बात नहीं है।

देशमें बिखरे उन दलोंमें-से ही एक छोटा-सा दल हमारा था। हमारे दलमें कभी पूरे सौ युवक नहीं रहे और वह कार्यशील भी कुछ वर्ष ही रहा। हमारा कार्य-क्षेत्र स्थानीय नहीं था। पूरे देशमें हम सक्रिय रहते थे। बिना सम्पर्क एवं परिचयके दूसरे दलोंको और जहाँतक हो सके सत्याग्रह आन्दोलनको भी स्थानीयरूपमें अपने ढंगसे सहायता देनेका प्रयत्न करते थे। हम अपने कार्यसे संतुष्ट थे। हमें न यश अभीष्ट था, न सत्ताका स्वप्न

हमने देखा। मातृभूमिके लिए अपना मस्तक अर्पित कर देना और वह भी अज्ञात रहकर, यह हमारी अभिलाषा थी।

दादा हमारे निर्देशक थे, संचालक थे, नायक थे। दल एक शरीर था और उसमें दादा मस्तिष्क तो थे ही, हाथ-पैरका काम भी सबसे अधिक करते थे। किंतु वे हमारे साथ अधिक दिन रह नहीं सके। उनको हमसे स्वेच्छापूर्वक पृथक् होना पड़ा। हम इतने अबोध एवं उद्धत थे कि उन स्थितप्रज्ञको हमारे मध्य रहना ठीक नहीं लगा।

दादा ही तो दल थे। दादा पृथक् हुए और दल कुछ दिनोंमें छिन्न-भिन्न हो गया। पृथक् होते समय दादाने कहा था—'अब इस सबकी आवश्यकता सम्भवत: नहीं है।'

मैं अपने उन दादाका ही एक दिनका एक संस्मरण सुनाने चला हूँ। पृथक् होनेके बाद वर्ष, दो वर्षतक उनका पता मुझे था, किंतु अब वे कहाँ होंगे—वर्षोंसे मुझे पता नहीं।

× × ×

'दादा! मुझे गोली मार दो। मैं अयोग्य सिद्ध हुआ। मैंने एक उत्तम अवसर खो दिया। माधव व्याकुल होकर फूट-फूटकर रो रहा था। बाहर जब नगरमें पुलिस उसे पकड़नेके लिए गली-गली दौड़ती फिर रही थी,

इस झोपड़ीमें वह दादाके पैर पकड़े कह रहा था—'आप दण्ड नहीं देंगे तो मैं अपनेको स्वयं गोली मार लूँगा।'

'तुम न अपनेको गोली मार सकते और न पुलिसके सामने जा सकते।' दादाका स्वर स्थिर गम्भीर था—'तुमने अपने आपको मातृभूमिके लिए दे दिया है। अपने सम्बन्धमें तुम कोई निश्चय नहीं कर सकते। तुम्हारे सम्बन्धमें निश्चय मैं करूँगा और जब मेरे निर्णयसे तुम लोग सहमत न हो सको, मुझे दलके नायकत्वसे पृथक् कर देना।'

'मैं उस कुत्तेको जीवित छोड़ आया और···' माधव फटे-फटे नेत्रोंसे दादाकी ओर देखता रहा। उसे यहाँके सिटी-मजिस्ट्रेटको गोली मार देनेका कर्तव्य दिया गया था। सिटी-मजिस्ट्रेट अंग्रेज है और उसने जो निर्मम दमन-चक्र चला रक्खा है, उसे देखते हुए दलने निर्णय किया था कि उसे अब जीवित रहनेका कोई अधिकार नहीं।

दादाकी योजनाओंने दलके किसी सदस्यको कभी पुलिसके हाथ पड़ने नहीं दिया। हममें-से किसीको फाँसीके तख्ते या अपराधीके कटघरेके दर्शनका सौभाग्य नहीं मिला। इसलिए भी हमारे दलके सम्बन्धमें लोगोंको कोई जानकारी नहीं हुई।

आज ही क्या हुआ था। क्रिकेट मैच देखने सिटी-मजिस्ट्रेट साहब पधारे थे। मैच जब जम चुका था, अचानक खेलके मैदानमें कहींसे एक बम गिरा। धुएँसे मैदान भर गया। सर्वथा अहानिकर बम—एक बड़ा-सा

पटाखामात्र था वह ; किन्तु उसमें भीड़में भाग-दौड़ मच गयी थी।

पुलिस दौड़ी उधर जिधर बम गिरा था और उसी क्षण एक युवककी जेबसे पिस्तौल निकली। उसने सामने-मजिस्ट्रेट साहब पर लगातार तीन गोलियाँ चलायीं और भीड़में कहाँ चला गया , कोई जानता नहीं। घबराहटमें गोरा मजिस्ट्रेट अपनी कुर्सीपरसे लुढ़क गया। युवकने समझा कि वह गोली खाकर लुढ़का है।

'यदि माधव सरलतासे न निकल सके' दादाकी योजनाओंमें ऐसी अनेक सम्भावनाएँ पहिलेसे रहती हैं। आप अनुमान नहीं कर सकते कि मैदानमें लगातार कई ओरसे डेढ़ दर्जन बम गिरनेपर क्या अवस्था होती। स्वयं दादा उपस्थित थे वहाँ और उनके साथ पूरे अठारह साथी और थे। उनके झोलोंमें बम थे और जेबोंमें दो-दो पूरी भरी पिस्तौलें। साथ ही प्रत्येकको सुरक्षित वहाँसे निकल जानेकी व्यवस्था थी।

केवल दादा और माधवको आना था उस झोपड़ी-में। दूसरे साथी नगरसे बाहर जा चुके थे। स्टेशनसे दो ट्रेनें विपरीत दिशामें जा चुकी थीं इसी समय।

माधवको भीड़मेंसे निकलते-निकलते पता लग गया कि वह सफल नहीं हुआ ; किन्तु अब लौटनेका समय नहीं था। दादा उसे लगभग घसीट लाये थे झोपड़ीके भीतर और वह अब फूट-फूटकर रो रहा था।

× × ×

'तुम अब भी नहीं जानते कि क्यों तुम सफल नहीं हुए।' दादाने समझानेका प्रयत्न सफल न होता देखकर कहा—'मैं यह खतरा ले लूँगा। एक गोली तुम चलाओ और उस वृक्षके उस फूलको उड़ा दो।'

आश्चर्य, माधव असफल हुआ। वह माधव असफल हुआ जिसका निशाना 'हम सबमें सबसे अधिक अचूक माना जाता है।

'तुम जबतक क्रोधमें रहोगे, ऐसा होगा।' दादाने बताया—'उस समय भी तुम अत्यधिक क्रुद्ध थे।'

'उस कुत्तेपर क्रोध नहीं आयेगा तो क्या दया आयेगी!' माधव सचमुच अब भी क्रुद्ध था।

'पहली बात तो यह कि हमने उसे मारनेका निर्णय किया किन्तु जो सबके जीवनका नियन्त्रक है वह उसे जीवित रखना चाहता था।' दादा अत्यन्त गम्भीर हो गये। 'दूसरी बात यह कि हमने उसे मार देनेका निर्णय किया, उसपर क्रोध करनेका निर्णय नहीं किया। वह अपनी समझसे अपना कर्तव्य कर रहा है। अपने देशके प्रति ईमानदार है। तीसरी बात यह कि क्रोध करके तुम स्वयं दुखी एवं असफल हुए। जिसपर तुमने क्रोध किया, उसकी कोई हानि नहीं हुई। अतः अबसे यह समझ लो कि तुम्हें क्रोध कभी नहीं करना है।'

'क्रोघ नहीं करना है?' माधवने आश्चर्यसे दादाकी ओर देखा। वह स्वभावसे अत्यन्त क्रोधी है। उसके लिए क्रोध न करना क्या सम्भव होगा।

'हाँ, क्रोध नहीं करना है। केवल कर्तव्यका पालन

करना है।' दादा कहते गये—'मैं जानता हूँ कि तुम्हारे लिए यह बहुत कठिन है; किन्तु यह करना है तुम्हें। हम सब निष्काम कर्मके साधक हैं। अपना लक्ष्य तो हमें सिद्ध ही करना है।'

'मुझमें कौन-सी कामना आ गयी?' कुछ चिढ़ उठा था माधव।

'कामात्क्रोधोऽभिजायते' अथवा 'लोभात्क्रोधोऽभिजायते।' दोनों बातें कही गयी हैं। हम कुछ चाहते हैं और वह नहीं होता, नहीं मिलता तो क्रोध होता है या हमें कुछ मिला है, वह कोई माँगे या छीने तो क्रोध होता है। हम चाहते हैं कि अमुक अधिकारी अमुक ढंगसे व्यवहार करे और वह नहीं करता तो हमें क्रोध आता है।' दादाके ये उपदेश कभी हमारे गलेके नीचे उतरे नहीं, यह सत्य मुझे यहाँ स्वीकार कर लेना है।

'हम कुछ नहीं चाहते तो व्यर्थ पिस्तौल लिये घूमते हैं।' माधव खीझ उठा।

'हम देशको स्वाधीन करनेके अपने कर्तव्यका पालन करने चले हैं।' दादा शान्त बने रहे—'तुम केवल इतना स्मरण रखो। शेष सब मुझपर छोड़ दो और कर्तव्य मानकर आदेशका पालन करो तो आज-जैसी असफलता नहीं आयेगी।'

'क्रोध आयेगा नहीं, यदि कामना नहीं आयेगी।'

दादाके वे स्नेह भरे वचन—'तुम क्रोध मत करो। चाहो कुछ मत। केवल कर्तव्यका पालन करो। जहाँ, जिस कर्तव्यमें लगे हो उस कर्तव्यका पालन करो।'

अलोभ

'अर्थानर्थेक्षया लोभम्'

वे दोनों मित्र थे। सगे भाइयोंमें भी ऐसा सौहार्द कम ही देखा जाता है। यद्यपि दोनोंकी प्रकृति उनके शरीरकी बनावटके समान सर्वथा भिन्न थी; किंतु इस वैषम्यका उनकी मैत्रीपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

दुबला-पतला पतली अँगुलियों और लंबे मुखवाला जेम्स एक छोटी-सी दाढ़ी रखता था और दार्शनिकोंके समान प्रायः गम्भीर रहता था। उसके साथी कहते थे कि उसे किसान न होकर पादरी होना चाहिये था; किन्तु वह कहता था—'मैं धर्मोपदेशक नहीं, उनके उपदेशपर चलनेका प्रयत्न करनेवाला हूँ।'

विलियम मोटा था, मोटी और दृढ़ थीं उसकी अँगुलियाँ और उसका मुख गोल तथा चौड़े जबड़ेवाला था। गंजे सिरका विलियम न दाढ़ी रखना पसन्द करता था, न मूँछ। यद्यपि वह भी साधारण किसान ही था; किन्तु उसके स्वप्न असीम थे। अरबपति बननेसे कमकी कल्पना उसने कभी नहीं की।

'मेरे हल्के-फुल्के दोस्त' प्रायः वह अपने अत्यन्त घनिष्ठ मित्र जेम्ससे कहता—'हम चूहे या गुबरैले नहीं हैं कि सदा मिट्टी खोदते रहेंगे। हमें आगे बढ़ना ही

होगा ! 'हाउस ग्राफ लार्डस्' में भी हमारे-जैसे मनुष्य ही बैठते हैं।'

'मैंने उन्हें देखा है मित्र !' जेम्समें कभी उत्साह नहीं ग्राया ऐसी बातोंसे। 'वे पाइप या सिगार पीकर, फलोंका रस पीकर या डाक्टरोंकी गोलियाँ खाकर जीवनके दिन काटते हैं। गुस्सेमें भरी बिल्लियोंके समान झगड़ते हैं। तकियेके नीचे रिवाल्वर रखकर भी उन्हें नींद लेनेके लिए डाक्टरकी दवा लेनी पड़ती है। ग्रपनी पत्नी ग्रौर बच्चोंसे भी सशङ्क रहते हैं ग्रौर उनकी पत्नी तथा पुत्र उन्हें धोखा देते हैं। वे ईश्वरसे तो बहुत दूर हैं ही, सुख-शान्ति-संतोषने भी उन्हें ग्रस्पृश्य मान लिया है। ऊँचा बड़ा मकान, सुन्दर मोटर कार, ग्रच्छे भड़कीले कपड़े ग्रौर कई सेलूट ठोंकनेवाले ग्रर्दली—इनपर खुश होनेवाले वे भोले बच्चोंके समान हैं।'

'ग्रब तुम ग्रपना लेक्चर बन्द तो करो !' विलियम खुलकर हँस पड़ता बीचमें ही। 'हम ग्रपने खेतमें खड़े हैं। तुम गिरजाघरकी वेदीके सामने नहीं खड़े हो।'

कदाचित् दोनोंकी जीवन-गाड़ी इसी प्रकार चली चलती; किन्तु पूरे यूरोपमें उन्हीं दिनों साम्प्रदायिकताका उन्माद छा गया। मनुष्य पिशाच बन गया। मनुष्यकी हत्या करके वह ग्रपनेको धर्मात्मा मानने लगा। पृथ्वी मानवरक्तसे लाल होकर काली हो गयी ग्रौर ग्राकाश चीत्कारोंसे सिर धुनने लगा। विलियम पहिलेसे उत्सुक था दक्षिण ग्रमेरिका जाकर स्वर्णकी खदान ढूँढ़ने के

लिए। जेम्सको मनुष्योंके इस उन्मादने मातृभूमि छोड़नेको विवश कर दिया।

× × ×

दोनों मित्र जब अमेरिका पहुँचे, आजका उन्नत अमेरिका उस समय कहाँ था। वह 'नयी दुनियाँ' अभी-अभी ढूँढ़ी गयी थी। ब्रिटेनने उसे अपना उपनिवेश बनाया था। पूरे देशमें वन थे—सघन वन, जिनमें भयंकर वन्य पशु रहते थे। कुछ स्थानोंपर आदिवासी थे। नवीन यूरोपीय परिवार प्रतिदिन जहाजोंसे उतरते जा रहे थे।

स्थानीय अधिकारी उत्सुक थे कि उपनिवेशकी जन-संख्या बढ़े। भूमि खाली पड़ी थी और आगतोंको आर्थिक सहायता भी दी जाती थी कि वे उस भूमिमें आवास बना लें तथा भूमिको इस योग्य बनावें कि वह भयंकर वन्य जन्तुओंको आश्रय देनेके स्थानपर मनुष्योंको आहार दे सके।

विलियम और जेम्स भी औरोंके समान सपरिवार आये थे। औरोंके समान ही इनके पास भी केवल अपने उद्योगशील शरीरकी ही पूँजी थी।

दोनोंको दूसरोंके समान भूमि तथा आवश्यक सहायता प्राप्त हो गयी। दोनोंने ही पड़ोसमें भूमि ली, पड़ोसमें आवास बनाये। दोनोंने ही खेतीसे अपने कार्यका श्रीगणेश किया।

'मैं सुअरोंकी भाँति सदा थूथनसे भूमि खोदने और जड़ोंके बदले आलू निकालने यहाँ आया हूँ।' विलियम बार-बार झुंझला उठता था। 'तुम मार्थाकी भली प्रकार देख-रेख कर सकते हो। वह अपने खेत सम्हाल लेगी। मुझे इसी फसलकी चिन्ता है। इसके बाद मैं दक्षिण चला जाऊँगा। मैं लौट आऊँ, तबतक धैर्य रक्खो। यह भूमि भी तुम्हारी है। मैं राजधानीमें भवन बनाना पसन्द करूँगा।'

किन्तु विलियमको कई फसलोंकी प्रतीक्षा करनी पड़ी। उस समय मशीनें कहाँ थीं। मजदूर मिलते नहीं थे। जो गुलाम आते थे, दक्षिणमें सोनेकी खदानोंमें खप जाते थे। अकेली मार्था खेत नहीं सम्हाल सकती थी और वह अब अकेली भी कहाँ थी। नन्हें हैनरीको भी तो उसे ही सम्हालना था।

'मेरा हैनरी किसान नहीं बनेगा!' विलियमका निश्चय एक दिन भी शिथिल नहीं हुआ। 'वह युनिवर्सिटीमें पढ़ेगा और अमेरिकाका सबसे बड़ा उद्योगपति होगा।'

जैसे ही फसल अनुकूल हुई, पालाने उसे खा नहीं लिया, विलियमने अपना झोला उठाया। वह कबसे इस दिनकी प्रतीक्षा कर रहा था।

'मित्र जेम्स! मार्थाका ध्यान रखना।' अपनी पत्नीसे बहुत प्यार है विलियमको और दक्षिणके दुर्गम वनोंमें—डाकुओंसे भरी भूमिमें वह मार्था तथा नन्हें हैनरीके लिए ही तो जा रहा है।

'ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे !' जेम्सने मित्रको खेदके साथ विदा दी। एकमात्र वह था जिसे दक्षिणका स्वर्ण आकर्षित नहीं करता था और अब विलियमको समझाने-में अपनेको असमर्थ पा चुका था—'मेरे भोले बच्चे ! बहुत उलझना मत। शीघ्र लौटना।' इतना ही कह सका वह विलियमसे।

× × ×

'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी !' पिछली घटना-को बीते अब दस वर्ष हो चुके हैं। जेम्स अब भी किसान है; किन्तु उसके पड़ोसमें अब दूसरा परिवार आ बसा है। विलियम अपनी भूमि, आवास तथा पशु बेचकर नगर चला गया कई वर्ष पूर्व।

सचमुच राजधानीके नगरमें अब विलियमका विशाल भवन है। नन्हा हैनरी अब स्कूलमें पढ़ता है और विलियम अपनी कम्पनी खड़ी कर चुका है। उसके स्वप्न साकार हो गये।

जेम्सके परिवारमें भी वृद्धि हुई है। उसका पुत्र भी स्कूल जाता है और उसकी पत्नी अब नन्हें एलेनको सम्हालनेमें खेतपर कम सहयोग दे पाती है। उसका टाइगर मर चुका और अब उसने 'टामी' कुत्तेको पाल लिया है। अब उसका घोड़ा भी बूढ़ा होने लगा है। यद्यपि वह पहलेके समान अभी खेत जोत लेता है।

अब भी विलियम और जेम्सकी मैत्री है। जेम्स अनेक

बार नगर जाता है। अपने घोड़ेपर वह ताजे फल और सब्जी ले जाता है अपने मित्रको उपहार देनेके लिए।

आज तो विलियमकी कार जेम्सके दरवाजेपर आयी है। वह नगरका प्रख्यात उद्योगपति आज इस देहातमें अपने मित्रसे मिलने आया है।

'कितने स्वस्थ और प्रसन्न हो तुम जेम्स !' विलियमके स्वरमें कोई ईर्षा नहीं थी। 'अब भी तुम दस वर्ष पहलेकी भाँति दीखते हो। तुम्हारी छोटी दाढ़ीके सब केश पहले जैसे काले और सुन्दर हैं।'

'तुम्हारे खिलौनोंकी क्या दशा है मेरे भोले बच्चे !' जेम्स विलियमको प्रायः इसी प्रकार पुकारता आया है। उसे आरम्भसे सनक है कि बड़े भवनों, मोटरों, मशीनों, आभूषणों आदिको खिलौने कहता है।

इन दस वर्षोंमें विलियम और भी मोटा हो गया है। उसकी तोंद बढ़ आयी है। उसका मुख शरीरके अनुपात-में छोटा लगने लगा है और उसके गंजे सिरके बचे-खुचे केशोंमें आधेसे अधिक सफेद हो चुके हैं। उनकी अँगुली-की अँगूठीमें बड़ा-सा हीरा चमक रहा है।

'वे सब ठीक हैं और बढ़ रहे हैं!' इस बार विलियमने जेम्सकी बात हँसीमें नहीं उड़ायी। वह सदाका हँसमुख आज गम्भीर बन गया था—'तुम ठीक कहते हो कि ये सब खिलौने हैं और ये खिलौने भी शैतानके दिये हैं। ये आदमीको अपनेमें बुरी तरह उलझा लेते हैं।'

'बात क्या है ?' जेम्स चौंका। विलियम जैसा व्यक्ति ऐसी बातें करे तो चौंकना स्वाभाविक है।

'मैं किसी भी मूल्यपर अपनी भूमि बापस खरीद लेने आया हूँ। मैं समझता हूँ कि कोई बड़ी कठिनाई नहीं होगी।' विलियमने कहा—'हैनरी अपना उद्योग सम्हालने योग्य हो जाय, इतनी प्रतीक्षा मैं नहीं कर सकूँगा।'

'तुम किसान बनोगे ?' जेम्स आश्चर्यसे मुख देखता रह गया अपने मित्रका।

'वर्षके कुछ महीने तुम्हारे पड़ोसमें बिताऊँगा।' विलियमने शान्त स्वरमें कहा··'तुम देख रहे हो कि मेरे खिलौने मुझे खाये जा रहे हैं। मुझे अब तीसरे दिन डाक्टर बुलाना पड़ता है। कई बार नींदकी दवा लेनी पड़ती है। माथी तक अब मेरा बिश्वास नहीं करती। मैंने सम्पत्तिके रूपमें पाया है—रोग, चिन्ता, श्रम, आशङ्का और स्वजनोंका अविश्वास !'

'तुम अब ठीक हो।' जेम्स भी गम्भीर हो गया। 'धनके दोष जिसे दीखने लग जायँ, लोभको वहाँसे भागना ही पड़ेगा।'

अमोह

'मेरा पुत्र ही सिंहासनासीन हो, यह मोह है वत्स !' आज सातवीं बार कुलपुरोहित समझा रहे थे मद्राधिपति-को—'सम्पूर्ण प्रजा ही भूपति के लिए अपनी संतान है और उसकी सुरक्षा संदिग्ध नहीं रहनी चाहिये।'

मद्रनरेशके कुमार बाल्यकालसे कुसंगमें पड़ चुके थे। वे उग्रस्वभावके तो थे ही, दुर्व्यसनोंने उन्हें अत्याधिक लोक-अप्रिय बना दिया था। प्रजा चाहती थी कि उत्तराधिकारी कुमार भद्रबाहु हों, जो मद्रनरेशके भ्रातृ-पुत्र थे; किंतु पिताकी ममता भी दुर्बल कहाँ होती है!

'तुम क्या अपने त्यागका सुफल प्राप्त कर सकोगे, यदि तुम्हारे ही कर्म तुम्हारी प्रजाको संतप्त करें?' कुलपुरोहितने गम्भीरतापूर्वक समझया—'अरण्यका तपस्वी जीवन तुम्हें कैसे शान्ति देगा जब तुम्हें यह समाचार मिलेगा कि तुम्हारा पुत्र प्रजाको उत्पीड़ित कर रहा है।'

'मैं नहीं चाहता था कि मेरे किसी वाक्यसे इस समय तुम्हें क्षोभ हो।' कुलपुरोहितका स्वर गद्‌गद् हुआ। राज्यका त्याग कर तारुण्य एवं वार्धक्यकी संधिमें ही जो यजमान तपका पावन-पथ स्वीकार करके बनवासी

होने जा रहा हो, उसे क्लेश देना ब्राह्मणको कैसे अभीष्ट हो सकता है। मैं चाहता था कुमारका भी मङ्गल और तुम्हारा भी।'

'कुमारका मङ्गल ?' महाराज समझ नहीं सके थे कुलपुरोहितका तात्पर्य।

'वेनका चरित तुम जानते हो। उत्पीड़ित प्रजाकी सहनशक्ति जब समाप्त हो जाती है, उसके असन्तोषसे ध्वंसका अट्टहास उठता है और'—अत्यन्त गम्भीर स्वर था—'अरण्यगमनसे पूर्व यदि नव-तापस मोहको मनसे दूर न कर चुका हो तो उसका तप अनेक बार उसे आबद्ध करनेकी शृंखलाओंका सृजन करता है। तप संकल्पको सबल बना देता है और आसक्ति उसे अनर्थका दिशामें उन्मुख नहीं कर देगी, कैसे कहा जा सकता है।'

'श्रीचरणकी आशङ्का अनाधार नहीं होगी; किन्तु ...।'

'मोह मानता नहीं, यही तो कहना चाहते हो ?' महाराजके वाक्यको कुलपुरोहितने सम्पूर्ण किया।

'आशङ्काकुल चित्तने सदा इन चरणोंमें समाधान पाया है।' पुरोहित और गुरुके पास भी यदि यजमानके मनके दौर्बल्यको दूर करनेका यत्न न हो तो उनका पौरोहित्य किस कामका। मद्रनरेशने जब स्वीकार कर लिया कि वे अपने मोहकी विवशता अनुभव करते हैं, अब उत्तरदायित्व कुलपुरोहितपर आ गया।

'मैं रात्रिके प्रथम प्रहरान्तमें पुनः राजसदन

आऊँगा।' दो क्षण मौन रहकर कुलपुरोहितने कुछ निश्चय कर लिया और वे उठ खड़े हुए।

× × ×

'अब हम दोनोंके मध्य यह एक सुकुमार प्राणी आ गया है।' एक नारीकण्ठ किसीसे कह रहा था—'यह इस कठोर शीतको कैसे सह सकेगा।'

'मैं भी कई दिनोंसे यहा सोच रहा हूँ।' पुरुष-स्वरने कहा—'तुम तनिक और खिसक आओ और मैं भी समीप हो जाता हूँ। हमारे शरीरोंकी गरमी इसे ठण्डसे बचायेगी।'

'नहीं, तुम तनिक दूर ही रहो।' नारीस्वर कह रहा था—'तुम इसके सुकोमल हाथ-पैरोंको कुचल डालोगे। निद्रामें कितने सावधान रहते हो, यह मुझे पता है।'

बहुत पुराना वृक्ष था बटका। वह फैलता रहा, शाखाओंसे जटाएँ फूटकर जड़ें बनती रहीं और वृक्ष बढ़ता रहा। शाखाएँ जीर्ण होकर मध्यसे टूटती गयीं। नवीन वृक्ष बनते गये। अब लगभग कोसकी चौथाई भाग भूमि वटबृक्षकी परम्पराने घेर ली है। ग्रीष्ममें शीतल छाया और शीतमें उष्णता देनेवाला यह अकिञ्चनोंका सखा—भिक्षुकोंके एक पूरे समूहने आश्रय ले रक्खा है यहाँ।

पतली टेढ़ी-सी लकड़ियाँ भूमिमें गाड़कर उनके

चारों ओर जीर्ण वस्त्र लपेट लिये गये हैं और एक घेरा बन गया है। इसे आप घर समझें, झोपड़ा समझें, डेरा समझें - भिक्षुकका यही राजसदन है। उसका पूरा परिवार उसके चिथड़े और मिट्टीके घड़े-सकोरे-ठीकरे सब इसी घेरेमें आश्रय पाते हैं।

वटवृक्षके नीचे थोड़ा-थोड़ा स्थान छोड़कर अनेक घेरे हैं जीर्ण वस्त्रोंके। रात्रिका अन्धकार वटकी छायाके नीचे और भी सघन हो गया है। भिक्षुकोंके घेरोंमें-से अधिकांशमें द्विपाद प्राणी पेटमें घुटने दबाये सिकुड़े सो गये हैं या सो जानेके प्रयत्नमें हैं। केवल कुछ घेरोंमें कभी-कभी फुसफुसाहट होती है।

'मैंने देखा है कि आज कहींसे वह बूढ़ा मंडल एक कम्बल ले आया है।' उसी घेरेमें-से पुरुष-स्वर फुस-फुसाहटमें कह रहा था 'वह है तो छोटा और फटा हुआ ही, किन्तु ...।'

'मैंने देखा है। अपने मुन्नेपर दुहरा आ जाय इतना बड़ा है।' नारी-स्वर फुसफुसाया 'किन्तु मंडल पूरा कृपण है। अपने सब चिथड़ोंके बदले भी देगा नहीं।'

'उससे माँगता कौन है? पुरुष-स्वर फुसफुसाया —'थोड़ी देर और रुको और फिर ..।' भीतर कोई बात संकेतमें कही गयी।

'नहीं, नहीं!' नारी-स्वरमें कुछ कम्प था भयका।

'उहँ, उसे वैसे भी अबतक मर जाना चाहिये था।' पुरुष-स्वरने उपेक्षापूर्वक कहा—'जीकर कौन-से सुख भोगने हैं उसको और अपना मुन्ना ..।'

लगता था कि नारीने प्रस्तावको मौन स्वीकृति दे दी। इसी समय दो पुरुषाकार छाया-मूर्तियाँ उस घेरेके समीपसे हटीं और वटवृक्षकी सघनतासे बाहर आकर उनमें-से एकने दूसरेसे कुछ कहा।

एक और व्यक्ति थोड़ी दूर दो घोड़े पकड़े खड़ा था। दोनों छायामूर्तियोंमें-से एकने उस घोड़े पकड़नेवालेको कोई आदेश दिया और वे दोनों घोड़ोंपर बैठ गये। घोड़ा पकड़नेवाला वटवृक्षकी छायामें अदृश्य हो गया।

× × ×

'मैं कर्तव्यच्युत होता यदि श्रीचरण मुझे वहाँ न ले जाते।' मद्रनरेश राजसदनमें लगभग अर्ध रात्रिको अपने एकान्त कक्षमें राजपुरोहितके चरणोंके समीप बैठे थे—'वृद्ध भिक्षुककी प्राणरक्षा किसी प्रकार न हो पाती। किन्तु इस दुरवस्थामें भी यह पाप-संकल्प?'

'वे अनेक शीतकाल इसी प्रकार व्यतीत कर चुके हैं। उन्हें अब भी अपने लिए कम्बलकी आवश्यकता नहीं है।' राजपुरोहितने कहा—'लेकिन, इस शीतकालके प्रारम्भमें उनके मध्य एक सुकुमार प्राणी आ गया है। वे दण्डके पात्र नहीं हैं।'

'उस सुकुमार प्राणीको, उन्हें, और सभी भिक्षुओंको पूरे वस्त्र कल प्रातः मिल जायँगे।' नरेशने खिन्न स्वरमें कहा—'उनके प्रति अपने कर्तव्यकी उपेक्षाका

मुझे खेद है। उनके आवासकी व्यवस्था राज्य करेगा ; किन्तु इस दरिद्रतामें भी दाम्पत्य और हिंसाको उद्यत मोह ....।'

'राजन् ! वे अपनी उदर-ज्वालाको ही पूर्ण नहीं कर पाते। उनके समीप शीत-निवारणके लिए पर्याप्त चिथड़े तक नहीं। विचारका उदय हो, इसके लिए अवकाश कहाँ है उनके समीप। किन्तु '- स्वर अत्यधिक गम्भीर हो गया 'जहाँ अवकाश है, जहाँ शास्त्रका अध्ययन एवं श्रवण है, वहाँ भी मोह कहाँ कम दुर्बल रहता है ? वहाँ भी विवेकको कहाँ अवकाश देता है वह ?'

'देव ! ' नरेशने कातर भावसे मस्तक रख दिया ब्राह्मणके चरणोंपर।

'केवल तुम्हारा विवेक ही तुम्हारे मोहको दूर कर सकता है।' राजपुरोहित अब स्वस्थ स्वरमें बोल रहे थे—'तुम उचित समयपर तप करने जा रहे हो ; किंतु तपका अर्थ है देहसे ऊपर उठना। देह मैं नहीं हूँ, देह मेरा नहीं है—यह समझ तपसे न आवे तो तप सिद्धियों-के बन्धनमें बाँधेगा अथवा भोगेच्छाके प्रलोभन उसे भङ्ग कर देंगे।'

'देह और मैं ! ' नरेश गम्भीर हो गये।

'मैं देह हूँ, यह अभिनिवेश ही शोक और मोहकी जड़ है। तुम देह नहीं हो तो तुम्हारा पुत्र कहाँसे आया ?' राजपुरोहितकी दृष्टि नरेशके मुखपर स्थिर हो गयी - 'जीव किसीका पिता-पुत्र नहीं हुआ करता। सम्बन्ध

सब देहका है, जड़का है और उसमें ममत्व तुम्हें जड़के साथ अवश्य बाँध रक्खेगा। तुम कौन हो—देह या चेतन आत्मा? विचारको उद्बुद्ध होने दो और वह मोहको नष्ट कर देगा।'

'मैं देह?' राजपुरोहित मौन हो गये थे और नरेश-के हृदयमें मन्थन चलने लगा था। विवेक केवल बौद्धिक तर्क नहीं है, वह प्रकाश है और जब वह अन्तःकरणमें अनन्त-अनन्त जन्मोंके पुण्यसे कभी प्रकट हो जाता है— अन्धकारकी युगयुगीन राशि प्रकाशकी नन्हीं किरणको भी श्रीहीन करनेमें कभी समर्थ नहीं हुई।

'मैं देह नहीं हूँ।' महाराजने मस्तक उठाया और पुनः श्रद्धासमन्वित उसे राजपुरोहितके चरणोंपर रक्खा।

× × ×

प्रातःकाल मद्र-प्रजाने शोकाकुल चित्त सुना—महा-राज रात्रिमें ही अरण्य जा चुके हैं। परम साध्वी महा-रानीने पतिका पदानुसरण किया। महामन्त्रीको आदेश है—'कुमार भद्रबाहुको सिंहासन दे दिया जाय और राजकुमार यदि कुलगुरुके निर्देशमें रहना न स्वीकार करें तो उन्हें राज्यसे निर्वासन-दण्ड दिया है स्वयं महाराजने।'

———

अदम्भ

अवस्था उनकी सत्तर वर्षसे ऊपर की हो गयी है— कदाचित् अस्सीके लगभग हो। दुबला शरीर है पर्याप्त लम्बा गौर वर्ण, श्वेत केश और अब झुर्रियाँ तो पड़नी ही हैं। सिर उठाकर जिसकी ओर देख लें, सौभाग्य उसका, अन्यथा मस्तक झुका ही रहता है सदा और दृष्टि जैसे अपने पदोंसे दो पद आगे तक ही सीमित रहती है।

'आप इतना श्रम क्यों करते हैं ?' उन सम्मान्य संतको मैंने भी देखा है कीर्तनमें तीव्रतासे घूम-घूमकर घण्टा बजाते। वे अनेक बार स्वेदमें भींग जाते हैं। उनसे मैं कुछ पूछ सकूँ, इतना न मेरा सामीप्य है और न मुझमें इतनी धृष्टता है। पूछा एक सन्तने ही जो पूछ सकते हैं।

इस प्रश्नका कारण है। कोई भी उन्हें कीर्तन करते देखकर इस भ्रममें कभी नहीं पड़ेगा कि वे भावावेशमें घूम रहे हैं। वे न अश्रु बहाते हैं, न लम्बी श्वास खींचते हैं और न ऊपर आँखें चढ़ाकर जिस-तिसके ऊपर मूर्छित होकर गिरते हैं। उनकी सहज सरलताको स्पर्श करनेका साहस दम्भका देवता भी नहीं कर सकता।

'वृद्ध शरीर है, वायु बढ़ी रहती है, थोड़ा व्यायाम हो जानेसे ठीक रहता है।' उन्होंने बड़ी सरलतासे उत्तर

दिया था— 'यह मुझे बहुत दिनोंसे सात्त्विक व्यायाम लगता है।'

'सात्त्विक व्यायाम'—मैंने सुना और सोचता रहा। शरीरकी इतनी प्रबल क्रियाके साथ मन नहीं रहेगा, यह सम्भव नहीं है। जो इस प्रकार घूम-घूमकर, कूद-कूदकर संकीर्तन करेगा, पूरा शरीर और शरीरकी शक्ति लगा देगा, उसका मन उस समय उस कीर्तनको छोड़कर जा कहाँ सकता है ? मन लग जाता है भगवन्नाममें और तनका परिश्रम भी पूरा हो जाता है। इससे उत्तम व्यायाम और क्या होगा ?

'किंतु आपके साथ जो सब लोग खड़े होते हैं।' दूसरोंकी चर्चा उन्हें कभी अच्छी नहीं लगती, यह सब जानते हैं; किंतु जिनके मनमें प्रश्न उठे, वे पूछें नहीं तो समाधान कैसे हो— 'वे सब लोग तो व्यायामको ही उत्सुक नहीं होते। उनमें-से अनेक अनेक बार आवेशमें आते हैं।'

'आप जानते हैं यह सब!' वे उत्तर देनेके बदले तनिक मुस्करा पड़े और चर्चा समाप्त हो गयी।

चर्चा समाप्त भले हो गयी हो, प्रश्न कहाँ समाप्त हो गया। मुझे तो अनेक दृश्य स्मरण आ रहे हैं। अनेक स्थानोंके, अनेक सन्तोंके समीपके लोगोंके, अनेक कीर्तन-उत्सवों तथा दूसरे अवसरोंके। रुदन-क्रन्दन, हाथ-पैर बचाकर मूर्छित होकर गिरना अथवा ध्यानकी प्रगाढ़ मुद्रा—मैं आक्षेप नहीं कर रहा हूँ; किंतु मैंने यह सब देखा है, साधकोंमें देखा है और देखा है उन श्रद्धेय

सन्तोंके समीप रहनेवाले लोगोंमें जिन सन्तोंमें मेरी असंदिग्ध श्रद्धा रही है—है।

'क्या है यह सब ?' मन पूछता है बार-बार सन्तोंके साथ भी ऐसे लोग दम्भ करते हैं। उन्हें भी वञ्चनामें रखना चाहते हैं।

किंतु ठहरिये—अभी वे औघड़ साधु आ रहे हैं। मुझे लिखते देखेंगे तो गाली देंगे या तो कौन जाने सीधे पीठपर डंडा फटकार दें। बड़े विकट होते है ये अलमस्त औघड़ भी। अतः अभी उनका स्वागत करना है मुझे।

× × ×

'राम ! तू अभी क्या सोच रहा था ?' बैठनेसे पूव प्रश्न कर लिया साधुने। कदाचित् मेरे मुखपर अपने चिन्तनकी कोई छाया रही होगी। ये महापुरुष सबको ही 'राम' सम्बोधन करते हैं। पशु पक्षियों तकको भी।

'मैं अभी नेपालसे लौटा हूँ।' अपने प्रश्नका उत्तार पानेकी अपेक्षा उन्होंने नहीं की—'इस बार गुरु गोरखनाथ-के अनुयायियोंका साथ हो गया था।'

'आपकी उनसे पट जाती है ?' मैंने हँसकर पूछा। अनेक बार मिलनेसे मैं धृष्ट हो गया हूँ और इन महा-पुरुषका भी मुझपर स्नेह है। इनका अटपटा स्वभाव—किसी मण्डलीके साथ कैसे पटेगी इनकी। अतः मेरा कुतूहल स्वभाविक था।

'रामका क्या पटना।' वे भी हँसे—'किंतु वे सब

जानते थे कि औघड़ बिगड़ जाय तो पूरे 'संसारको भारी पड़ता है।'

मैं जानता हूँ कि अघोर-पंथ और नाथ-पंथ दोनोंमें अच्छे सिद्ध हुए हैं और यह भी जानता हूँ कि इन महा-पुरुषकी अपने सम्प्रदायके उन सिद्धोंमें कितनी गौरव-बुद्धि है। इस समय वे अपनी चर्चा नहीं कर रहे थे।

'औघड़ बच्चा सच्चा हो तो सद्गुरुकी गोदमें रहता है।' वे उत्साहमें थे— 'सिंहनीके शावकको उसके सामने छेड़कर मरना है क्या किसीको।

बात तो सच्ची है और निष्ठाकी है। भाव सच्चा हो तो भक्त क्या नित्य भगवान्‌की गोदमें नहीं रहता ? देखा तो था दुर्वासाने ऐसे एक भक्तको छेड़कर।

'नाथ साधुओंमें भी सच्चे होते हैं।' मैने धीरेसे कहा।

'होते हैं—अच्छे योगी होते हैं और उनपर सिद्ध गुरुका सदा हाथ रहता है।' महापुरुषोंमें पक्षपात देखा-सुना गया नहीं। वे खुले हृदयसे कह रहे थे— 'औघड़ोंमें भी भ्रष्ट दम्भी होते हैं। राम ! किसी वनमें सब सिंह ही नहीं होते। सिंह तो गिने-चुने होते हैं।'

'आप मुझे कोई यात्राका अनुभव सुना रहे थे।' बात अन्य दिशामें जा रही थी, अतः मैंने उन्हें स्मरण दिलाया।

'वही तो सुना रहा था।' वे गम्भीर हो गये— 'लौटते समय एक रातको एक बूढ़े साधुने मुझे धीरेसे

जगाया और अपना झोली-खप्पर उठाकर जंगलमें चल पड़ा। मैं उसके संग हो लिया। उसे स्वप्नमें गुरुका आदेश हुआ था कि शेष लोगोंका साथ छोड़ दे और मुझे भी उनसे अलग हो जानेको कह दे।'

'वह कहाँ गया, मुझे पता नहीं; किंतु सुना कि दलके शेष साधुओंको बहुत कष्ट हुआ। वे अगले गाँवमें रुक गये और दूसरे दिन चले तो वर्षा, ओले, पत्थर और अन्तमें, एक रीछनीने भी जंगलमें उनपर आक्रमण किया। कइयोंको उसने नोच डाला।' वे खेदपूर्वक कह रहे थे।

'आप वनमें उसके साथ नहीं गये?' मैंने पूछा।

'नहीं' वे कहने लगे— 'उसने मुझे तत्काल मार्गसे ही आगे चले जानेको कहा। उसे जब सिद्ध गुरुका आदेश था अकेले जानेका, मैं क्यों साथ जानेका हठ करता।'

'अन्ततः वे लोग भी उसी सम्प्रदायके साधु थे।' मैंने पूछा— 'उनकी रक्षा भी होनी चाहिये थी।'

'राम! गुरु और ईश्वरमें पक्षपात नहीं होता' व बोले—'वेशका दम्भ करनेसे कोई उनका नहीं हुआ करता।'

'दम्भ जाता भी नहीं उनकी शरण लेनेसे?' मैं अपने मूल प्रश्नपर अचानक आ गया।

मुझे लगा कि वे उत्तर नहीं देंगे। अनेक बार वे उत्तर नहीं देते। किसी प्रश्नका उत्तर देना न देना उनकी इच्छा है। एक चलती चर्चाको आधे वाक्यपर छोड़कर

सर्वथा भिन्न चर्चा वे कभी भी प्रारम्भ कर देते हैं, यह मैंने अनेक बार देखा है। आज भी यही हुआ।

× × ×

कल वे औघड़ सन्त पधारे थे यहाँ।' मैं गङ्गा-किनारे प्रायः जाता हूँ एक साधुके पास। वे साधु हैं; किंतु किसी सम्प्रदायमें उन्होंने कभी दीक्षा ली या नहीं, कोई नहीं जानता। वृद्ध हैं, फूसकी झोंपड़ीमें रहते हैं और निःस्पृह हैं। वे क्या साधन-भजन करते हैं, यह भी किसी-को कुछ पता नहीं। आज उनके चरणोंमें प्रणाम करके बैठा तो बोले— 'तुमने उनसे कुछ पूछा था?'

'उन्होंने तो उत्तर दिया ही नहीं।' मैंने कहा! मुझे कुतूहल हुआ कि वे यहाँ क्यों मेरे प्रश्नकी चर्चा कर गये।

'जैसे वृत्तका केन्द्र-बिन्दु होता है; भगवान् सबके केन्द्र हैं। परिधिसे भीतर चली सब सीधी रेखा केन्द्र तक जाती हैं।' वे कह रहे थे— 'सब साधन भगवान् तक पहुँचते हैं।' यदि सीधे दृढ़तापूर्वक उनपर चला जाय और वे अन्तर्मुख हों।'

'अघोर पंथ घृणापर विजयका मार्ग लेकर चलता है।' दो क्षण रुककर बोले वे— 'वह गिने-चुने अपवाद-जैसे लोगोंका मार्ग है और जब तुम किसीसे कुछ पूछते हो, प्रश्नका समाधान बौद्धिक उत्तर मात्रसे नहीं हुआ करता। कसाई अहिंसाकी बात करे तो क्या वह चित्तमें बैठेगी?'

मैं चुप सुनता रहा, किंतु अब भी बात मेरी समझमें आयी नहीं थी।

'चित्तका समाधान होता है जब समाधानकर्ताके शब्दोंके साथ उनके ऐसे संस्कार हों जो श्रोताके चित्तके अनुकूल हों। किसे किस प्रश्नका उत्तर किसको देना चाहिये, यह बिना समझे उत्तर देनेसे कुछ दिनोंमें वह श्रोता भूल जायगा और उसका प्रश्न चित्तमें ज्यों-का-त्यों बना रहेगा।'

मुझे अब कुछ कहनेको नहीं था। मैं जानता हूँ कि लोग मुझसे ही एक ही प्रश्न बार-बार करते हैं। जब मिलते हैं, वही प्रश्न। समाधान पाकर जाते हैं और दो-चार महीने बाद केवल प्रश्न रहता है उनके पास।

'प्रशंसाकी इच्छा ही दम्भ बनती है।' वे बोले—बड़ी दुर्जय वृत्ति है यह। साधन करनेसे भी कदाचित् ही जाती है। महापुरुषोंके पास रहनेसे—जीवनभर पास रहनेसे भी न जाय, ऐसा देखा गया है। जाती है महा-पुरुषकी और सबसे महान् भगवान्‌की उपासनासे। उपासनाकी निष्ठा जबतक हृदयमें न आवे—दम्भ जायगा नहीं। दम्भ दूर करना है तो महत्तामकी उपासना करो।'

मैं समझ गया कि औघड़ सन्त गुरुकी उपासना ही बता सकते थे, जो मेरे गले कदाचित् ही उतरती; अतः उन्होंने उत्तर नहीं दिया था।

अहिंसा

बात बहुत पहलेकी है—इतने पहलेकी कि मनुष्य तब आजके दानवाकार यन्त्र बनानेकी बात सोच भी नहीं सकता था। उस युगमें भी एक वैज्ञानिक था। आजके वैज्ञानिक मुझे क्षमा करेंगे—मुझे लगता है कि अभी उस वैज्ञानिकके ज्ञानतक आजका मनुष्य नहीं पहुँच सका है।

'मैं अपने यन्त्रोंके सब रहस्य आपको बतला दूँगा। मेरे सेवक उनके निर्माणमें निपुण हैं और वे आपके आज्ञानुवर्ती रहेंगे।' उस वैज्ञानिकने एक दिन भारतके एक वरिष्ठ पुरुषके सम्मुख प्रस्ताव किया—'आप दिव्यास्त्रोंके श्रेष्ठतम ज्ञाता हैं। मेरे अविष्कारोंको प्राप्त करके त्रिभुवनमें अजेय हो जायँगे।

वैज्ञानिक कभी डींग नहीं हाँकता। उस वैज्ञानिककी प्रतिभाका लोहा देवता भी स्वीकार करते थे। उसने गगनमें उड़ते पूरे नगर निर्माण कर दिखाये थे। ऐसे नगर जो पृथ्वी ही नहीं, समुद्रपर या जलके नीचे भी उतरकर, जबतक चाहें रह सकें और गगनमें शब्दकी गतिसे नहीं, प्रकाशकी गतिसे चाहे जहाँ जा सकें। उन नगरोंको किसी प्रकार आघात नहीं पहुँचाया जा सकता था और उनके निवासी नगर स्थिर हो या गतिमान,

उसी प्रकार रहते थे, जैसे भूमिपर स्थिर नगरमें आप रहते हों। क्या हुआ कि उन नगरोंको नष्ट होना पड़ा। जो सृष्टिका ही संहार कर देता है, उसे भी उन नगरों-को ध्वस्त करनेमें स्वेद आ गया था।

वह महावैज्ञानिक - कोई भी उसकी कृपा प्राप्तकर कृतार्थ हो सकता था; किन्तु वह स्वयं प्रार्थी हुआ कि उसके अविष्कार कृपापूर्वक स्वीकार कर लिये जायँ। उसने अपने सेवक— आजकी भाषामें अपने निपुणतम इञ्जिनियरोंका समूह अवैतनिक सेवकोंके रूपमें सदाके लिए देनेका स्वयं प्रस्ताव किया।

वैज्ञानिक कभी अकृतज्ञ नहीं रहा है। वह भी वज्ञानिक था। वह उस समय कर भी क्या सकता था जब कि उसके चारों ओर वनमें प्रचण्ड दावाग्नि भड़क चुकी थी। उसने प्राणदान माँगा और किसी आर्य शूरने शरणागतको अभय देनेमें अभी अस्वीकार सीखा नहीं। अब वैज्ञानिककी बारी थी कि वह अपने जीवन-रक्षकके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करे।

'मेरे लिए मेरे दिव्यास्त्र पर्याप्त हैं।' अकल्पनीय उत्तर मिला वैज्ञानिकको—'तुम्हारे आविष्कृत यन्त्रोंकी शक्ति प्रयोक्ताके नियन्त्रणमें नहीं रहती। प्रयोगके पश्चात् उन-से कितनी हिंसा होगी, प्रयोक्ता भी नहीं जानता। महायन्त्र सामान्य स्थितिमें भी प्राणियोंकी हिंसा करते हैं। अनजानमें जो क्षुद्र जीव उनसे मरते हैं, उन्हें बचाया नहीं जा सकता। अतः मैं तुम्हारे यन्त्र स्वीकार नहीं कर सकता। तुम कुछ अन्यथा मत सोचो। मैं तुमपर

प्रसन्न हूँ। तुम्हारा मङ्गल हो।'

यह उत्तर—किंतु आप जानते हैं कि बाबा नन्दके लाड़लेकी जिसे कृपा-कोर भी मिल जाती है, त्रिलोकी-का वैभव उसके चरणोंकी ठोकर पाने योग्य भी नहीं रह जाता। वैज्ञानिकके प्रस्तावको अस्वीकार करनेवाले थे उस मयूरमुकुटीके अभिन्न सखा अर्जुन और वे महा-वैज्ञानिक थे दानवेन्द्र मय।

'पार्थ! आपके विवेक एवं त्यागने श्रीकृष्णको अपना बना रक्खा है; किन्तु, मय केवल वैज्ञानिक ही नहीं, भगवान् शंकरके परम प्रिय भक्त हैं और तत्वज्ञ हैं। अपना प्रस्ताव अस्वीकृत हो जानेका उन्हें खेद नहीं हुआ। किन्तु अर्जुनके चित्तको वे एक प्रश्न दे गये—'आपने अभी-अभी खाण्डव वन अग्निदेवको अर्पित कर दिया है और आपके दिव्यास्त्र आपको हिंसाका निमित्त बनाये बिना रहेंगे, ऐसी आशा आप भी करते नहीं होंगे।'

× × ×

'अच्युत! आपके आदेश मेरे लिए सदा शास्त्र रहे हैं।' गाण्डीवधारीके प्रश्नका समाधान जहाँ प्राप्त हो सकता था, वहीं पहुँचा वह प्रश्न—'हमने खाण्डव अतिथि अग्निदेवको अर्पित कर दिया; किन्तु वनके जो असंख्य प्राणियोंकी हत्या हुई ।'

'बहुत प्राणी मेरे बाणोंसे ही मारे गये, यह बात भी पूरी कर दो।' मञ्जु स्मित आया मोहनके श्रीमुखकमल-

पर—'जो प्रजाका त्राता है, वह अहिंसक बन जायगा तो सम्पूर्ण प्रजा नष्ट हो जायगी। प्रजाके प्राण एवं धन-की रक्षाके लिए तुम्हारे हाथमें धनुष रहता है। वन्य पशु एवं प्राणी जब मानवके प्राण एवं उत्पादन के लिए संकट बन जायँ, पालकके लिए उनकी हिंसा अनिवार्य हो जाती है।'

अर्जुनने मस्तक झुका लिया। अनेककी हिंसा रुकती हो कुछ थोड़े प्राणोंकी बलिसे तो उन थोड़े प्राणोंकी बलि अहिंसा भले न हो, कर्तव्य अवश्य हो जायगी, यह पार्थको समझना नहीं था। उन्हें यह भी समझना नहीं था कि सम्पूर्ण प्रजा अपने अहिंसा-धर्मका पालन कर सके, इसलिए अनिवार्य हिंसाका कर्तव्य क्षत्रिय अपने सिर लेता है। उसका धनुष उस कर्त्तव्य-पालनरूप हिंसाका—प्रजाकी रक्षाका और अभयका प्रतीक है।

'अहिंसा क्या इस प्रकार सापेक्ष धर्ममात्र है?' मयने अर्जुनके मनमें प्रश्न तो यह जगाया था और इसीका उत्तर वे अपने नित्य सखासे चाहते थे।

'देव!' इसी समय दारुकने आकर मस्तक झुकाया अञ्जलि बाँधकर।

'अभी कही यात्रा करनी है आपको?' अर्जुनने श्री-कृष्णचन्द्रके सारथिकी ओर देखा और फिर देखा अपने उन अद्भुत मित्रकी ओर। इस यात्राकी तो उनसे कोई चर्चा हुई ही नहीं थी।

'मैं एकाकी कहाँ जा रहा हूँ। तुम भी मेरे रथसे ही चलो।' श्रीकृष्णचन्द्रने उठते हुए अर्जुनको भी हाथ

पकड़कर उठा दिया—‘समीपके अरण्यमें अवधूतश्रेष्ठ चण्डकेतु पधारे हैं। तुम उनके नामसे परिचित हो—सुह्मके भूतपूर्व प्रतापी नरेश। राजसदन वे आनेसे रहे। हम उन्हें प्रणिपात कर आवें।’

‘चण्डकेतु—वे अप्रतिभट महाशूर, जिनसे जरासंधको भी मैत्रीकी याचना करनी पड़ी थी और वे अब अवधूत हैं।’ अर्जुनके मनमें अनेक स्मृतियाँ आयीं। अनेक विचार उठे—‘उनका सख्य था पिताश्रीसे; किन्तु आज उन वीतरागके लिए पुराने स्नेह-सम्बन्ध कहाँ स्मरणीय हैं। वे तो इन मयूरमुकुटीके भी दर्शनार्थ नहीं आ रहे नगरमें।

× × ×

‘वासुदेव ! तुम सचमुच करुणा-वरुणालय हो।’ अवधूत चण्डकेतुने प्रणाम करते श्रीकृष्णको भुजाओंमें भर लिया था और अपने नेत्र-प्रवाहसे उनकी घुँघराली अलकें सींचते जा रहे थे—‘आज मेरा शरीर-धारण सार्थक हुआ। धन्य हो गये मेरे नेत्र।’

‘धूलि-धूसर देह, अस्त-व्यस्त केशराशि, कौपीन-मात्र वस्त्र—कोई पागल हो ऐसे प्रतीत होते अवधूत देरतक हृदयसे द्वारिकेशको लगाये रहे और अन्तमें वहीं भूमिपर अर्जुनने अपना उत्तरीय डाल दिया। तीनों ही बैठ गये उस आसनपर।

‘एक एकाकी अकिञ्चन कहाँ तुम्हारे दर्शनकी तृष्णा नेत्रोंमें सँजोये है, तुम इसे सावधानीसे स्मरण रखते हो।’ अवधूतके अश्रु थमते नहीं थे।

'पार्थके मनमें प्रश्न है कि महाराजने यह वेश क्यों स्वीकार किया ?' श्यामसुन्दरने प्रसङ्ग परिवर्तित किया —'महाराज धर्मके ज्ञाता हैं और प्रजा-रक्षणरूप धर्म क्षत्रियको परमगति देनेमें असमर्थ नहीं है।'

'तुम्हारी कृपासे मैं धर्मका कुछ मर्म समझ सका हूँ ; क्योंकि धर्मके प्रभु तुम्हीं हो।' अवधूतने अपने हाथोंसे ही नेत्र पोंछ लिये —'तुम चाहते हो कि अहिंसाकी बात अवधूत ही करे।'

दो क्षण रुककर वे अवधून बोले—'प्राणियोंको पीड़ा दिये बिना भोग प्राप्त नहीं होते। पदार्थ असीम नहीं हैं और प्राणियोंकी कामनाएँ अनन्त हैं। मैंने देखा—मेरे कुछ शस्त्रोंके सहारे मकड़ीने जाला बना लिया है। कई दिनसे वे शस्त्र प्रयोगमें आये नहीं थे। उस क्षुद्र जीवका भवन नष्ट किये बिना मैं वे शस्त्र उठा नहीं सकता था।'

'वत्स ! व्यवहार हिंसाकी एक सीमाके औचित्यको स्वीकार करके चलता है। तुम जिन पदार्थोंका उपयोग करते हो, वे सभी अन्य प्राणियोंके अभिलषित हो सकते हैं। उनकी कामनाको नष्ट करके ही हम भोग पाते हैं।' मेरे पूछनेपर कुलगुरुने कहा था—'तुम जानते ही हो कि तुम्हें अनेक रोगोत्पादक क्षुद्र जन्तुओंके विनाशकी व्यवस्था राज्यमें रखनी पड़ती है। अन्न-फलके कृमिवर्ग-को नष्ट करना पड़ता है। अपने एवं अपने आश्रितोंकी जीवन-रक्षाके लिए एक सीमातक हिंसाको स्वीकार करना अधर्म नहीं है।'

'कर्तव्यकी भी एक सीमा होती है। उस सीमासे

आगे कर्तव्यकी मान्यता भी मोह ही है।' मैंने कुलगुरुसे जिज्ञासा की—' युवराज अब प्रजाकी रक्षा करनेमें सक्षम हैं। मेरा कर्तव्य अब सम्पूर्ण माना जाना चाहिये।'

'तुम सम्यक् सम्बुद्ध हो।' कुलगुरुने अनुमति दे दी—' युवराजका अभिषेक करके तुम अब कर्तव्य-मुक्त हो सकते हो।'

' जबतक शरीरकी सार्थकता है, शरीरके धारणके कर्तव्य शेष हैं, अन्तःकरणकी शुद्धिके लिए कर्तव्य-कर्म आवश्यक हैं, अहिंसा सम्यक सम्पूर्ण नहीं हो सकती।' अवधूतने कहा—' इस शरीरके रहने-न-रहनेका आग्रह जब पूर्णतः छूट जाता है, शरीरकी अपेक्षा नहीं रहती, तब सम्पूर्ण प्राणियोंको अभयदान देकर संन्यास परिपूर्ण होता है।'

' माधव ! मैंने भूल नहीं की, इसका प्रमाण है कि तुम मुझे इस अरण्यमें दर्शन देने स्वयं आये।' फिर अवधूतका स्वर गद्‌गद हुआ—' और पार्थ ! तुम तो साधनोंका फल पहले ही प्राप्त कर चुके हो। ये श्रीकृष्ण तुम्हारे सखा हैं; तुम्हारे लिए कहाँ कुछ कर्तव्य एवं प्राप्तव्य रह गया है ?'

अचौर्य

श्रीपशुपतिनाथका दर्शन तब इतना सुलभ नहीं था, जितना आज हो गया है। तब पक्की सड़क नेपालतक नहीं बनी थी। कुछ दूर रेलवे यात्रा, कुछ दूर मोटरोंसे और फिर पैदल।

मुझे कल्पना भी नहीं थी कि रेलवे इंजिनमें पत्थरके कोयलेके स्थानपर लकड़ीका ईंधन उपयोग करनेसे क्या कठिनाई आती होगी। शिवरात्रिके अवसरपर कुछ दिनोंके लिए तीर्थयात्रियोंको भारतसे काठमाण्डु जानेकी बिना छानबीन अनुमति दी जाती है। वैसे ही अनुमति-पत्र उस समय भी दिये गये; और उन्हें एक नेपाली अधिकारीने उदारतापूर्वक सबको बाँट दिया। मार्गमें एक स्थानपर अनुमति-पत्रकी जाँच भी साधारण ही हुई।

मेलेके अवसरपर भीड़की ठेलमठेल सर्वत्र होती है। बड़ी कठिनाईसे हम रेलके एक मालगाड़ीके डिब्बेमें घुस सके और किसी प्रकार दबे-सिकुड़े खड़े हो गये। ट्रेन चली और साथ ही यात्रियोंकी आँखोंसे आँसू चले। इंजिनमें लकड़ी जल रही थी। उसका धुआँ बहुत कष्ट दे रहा था। मिनट-दो-मिनटपर कोई-न-कोई चौंकता था। इंजिनमें लकड़ीके जलनेसे चिनगारियाँ उड़ रही थीं और वे यात्रियोंके शरीर या वस्त्रोंपर पड़ती थीं।

कइयोंके फफोले पड़े, कइयोंको वस्त्रमें लगी आग बुझानी पड़ी।

लकड़ी बहुत कम ताप दे पाती है। ट्रेन इस गतिसे चल रही थी कि कोई भी चाहे जब उतर सकता था या दौड़कर चढ़ सकता था। स्टेशन आया और डेढ़-दो घंटे इंजिनमें लकड़ी चढ़ायी जाती रही। इस प्रकार लगभग २४ मीलकी यात्रा सायंकाल चार बजे जो प्रारम्भ हुई थीं रात्रिके लगभग ग्यारह बजे पूरी हुई।

यदि मार्ग होता और घोर जंगल न पड़ता होता तो इतनी देरमें हम पैदल भी यह यात्रा कर ले सकते थे। बैलगाड़ीकी सवारी तो उस समयकी उस ट्रेनसे शीघ्रगामी सिद्ध होती।

हमें मालगाड़ीके डिब्बोंसे छुट्टी मिली। किस दूकान-दारने दो हाथ रात्रिके तीन-चार घंटे व्यतीत करनेको प्रदान करनेकी कृपा की, अब स्मरण नहीं। प्रातः चार बजेसे पूर्व ही सामान ढोनेवाली एक मोटर ट्रकमें हम सब लद गये और भीमफेड़ी पहुँचे।

पहाड़ी चक्करदार मार्गोंपर कुछ यात्रियोंको चक्कर आता है, वमन होता है। ट्रकमें यात्री अधिक बैठे थे। यह अच्छा हुआ था; क्योंकि परस्पर सटे होनेसे शरीर हिल नहीं पाते थे। इससे चक्कर एक दो यात्रियोंको ही आया था। विशेषकर सबसे पिछले भागमें बैठे उन यात्रियोंको, जिन्हें बैठनेका स्थान कुछ अधिक मिल गया था।

भीमफेड़ीसे आगे पैदल यात्रा करनी थी। वहाँ दो

घंटे विश्राम, नित्यकर्म, स्नान और भोजन—इतना ही कार्यक्रम था; किंतु वहाँ जो छोटी-सी धर्मशाला थी, उसके घेरेमें जाते ही चित्त खिन्न हो गया। घेरेमें चलनेकी पगदंडी मात्र स्वच्छ थी। पूरा घेरा यात्रियोंने शौच बैठकर गंदा कर दिया था। जब कि समीप ही मैदान था; नाला था और कुछ गज आगे जंगल भी था।

'यात्री—तीर्थयात्री इतने असावधान क्यों होते हैं ?' सोचता रहा। मन्दिरमें स्थित देवताके दर्शन ही पुण्य नहीं हैं। पुण्य है उनकी कृपा प्राप्त करना और देवताकी कृपा तपसे, सेवासे, श्रद्धासे तथा भजनसे मिलती है। हम दूसरे देवदर्शनार्थ आनेवाले श्रद्धालुओंको धक्का देकर, उनके लिए असुविधा उत्पन्न करके मन्दिरमें घुस भी जायँ, तो क्या देवता प्रसन्न होंगे ? उनकी कृपा मिलेगी हमें ?

जहाँ यात्री रुकते हैं, जहाँसे चलते हैं, जहाँ बैठते, जल पीते या स्नान भोजन करते है, उसके आसपास अथवा जलधाराके समीप गंदगी करके हम भक्तापराध ही तो करते हैं। दूससे श्रद्धालु यात्रियोंके लिए असुविधा ही तो उत्पन्न करते हैं और हम जानते हैं कि भगवान् भी भक्तापराध क्षमा नहीं करते।

यात्रियोंकी सेवा, उनके उपयोगी स्थलोंकी स्वच्छता और देव-दर्शनमें दूसरोंकी सुविधाका ध्यान—यह ऐसी पूजा है जो देवताको किसी भी बहुमूल्य उपचारसे कहीं अधिक प्रिय होती है।

मैं यह सब सोचता रहा और ढूंढ़ता रहा कि कहीं बठनेको स्थान मिल जाय तो स्नान-संध्याका क्रम प्रारम्भ हो।

× × ×

यात्रामें मेरे साथ दो और यात्री हो गये थे। वे मुझे मुजफ्फरपुर स्टेशनपर मिले थे और काठमाण्डूतक साथ रहे। हम तीनों धर्मशालाके पीछेकी ओर उसके पक्के चबूतरेपर बैठ गये। बारी-बारीसे नित्यकर्म एवं स्नान हमने किया। अब मैं नित्यके पाठ-पूजनमें लगा और वे दोनों साथी भोजन करनेमें लग गये।

हमें कुलियोंके एक समुदायने घेर लिया था। पर्वतीय दूरस्थ ग्रामोंके ये गरीब लोग इस आशामें इस समय यहाँ आ जाते हैं कि यात्रियोंका सामान ढोकर दो पैसे अपने बाल-बच्चोंके लिए ले जा सकें। वर्षभरके लिए वस्त्र तथा घरेलू खेती आदिके औजार वे मजदूरीके पैसोंसे ही ले जाते हैं।

प्रायः सभी यात्रियोंके पास उन्हें घेरे कुलियोंका समूह खड़ा था। हम तीनोके पास इतना ही सामान था कि हमने सम्मिलित रूपसे एक कुली करना निश्चय किया था। वे दोनों साथी मेरी ओर संकेत करके कह रहे थे—'इन बाबूको पूजा कर लेने दो तो ये तुमसे बात करेंगे।'

हमको बताया गया था कि यहाँ अपने सामानसे सावधान रहना चाहिये; किंतु ऐसी सावधानी, पता नहीं, मुझमें कभी आयेगी भी या नहीं। संध्या-पूजाके

समय भी सब सामान आगे रखकर उसकी चौकीदारी की जाय तो कोई पूजा-पाठ क्या करेगा। मैंने सामान समेटकर पीछे कर दिया था। कम्बलके एक भागमें मेरे कपड़े और सामान लिपटा था। दूसरा भाग आगे बढ़ाकर मैंने आसन बना लिया था।

मेरे दोनों साथी प्रायः मेरे पास एक पंक्तिमें बैठे थे। मैदानकी गंदगी दृष्टिमें न आवे, इसलिए हमने मुख धर्मशालाकी दीवारकी ओर कर रक्खा था। अपना पूरा सामान और वस्त्र गोदमें रक्खे वे मेरे साथके यात्री उसीपर पूड़ियोंकी पत्तलें रक्खे भोजन कर रहे थे।

'ले गया! ले गया! हाय, ले गया!' सहसा साथके दोनों यात्री चिल्ला उठे। उनमें-से एक खड़े होकर भी फिर बैठ गये और दूसरे दौड़े, कुछ मिनटमें वे भी लौट आये। कोई कुली उनकी गोदमें-से उनका कोट खींचकर भाग गया था और वह जंगलमें निकल गया। अब ढूंढ़ना सम्भव नहीं था।

× × ×

'वैसे ही क्या कम दरिद्रताका मारा है वह! चोरी तो उसे और कंगाल करेगी!' मुझे पता नहीं क्यों एक सनक है। बचपनमें पिताजीसे पाये संस्कार कह लीजिये। मेरी धारणा तर्कसंगत मैं कैसे कहूँ, किंतु धारणा है कि 'चोरीका धन आया और मनुष्य विपत्तिमें पड़ा। रोग, मुकदमे और कुछ न हो तो कोई दुर्व्यसन घरकी पूँजी भी अवश्य ले जायगा।'

'मेरी कोटकी जेबमें इनके भी पच्चीस रुपये थे।' मेरे साथीने बताया। उन दोनोंमें एक व्यापारी थे और दूसरे किसी दफ्तरमें काम करते थे। अब संतोष करनेके अतिरिक्त उपाय भी क्या था।

'उसकी मौज हो गयी। एक अन्य यात्रीने कहा—'एक बढ़िया ऊनी कोट और पचास-साठसे कम नकद तो क्या रहे होंगे जेबमें।'

'लेकिन मौज नहीं, विपत्ति गयी उनके पास।' मैंने कहा—'नेपालमें रुकना नहीं है, अन्यथा आप चार महीने बाद उसकी दशा देख सकते थे। जो धन सच्ची कमाईका है, उसे कोई चुरा नहीं सकता और जहाँ चोरी-का धन आया, वह किसी-न-किसी रास्ते स्वयं जायगा और घरकी पूँजी भी ले जायगा।'

यह घटना पिछले महासमरसे पहलेकी है। तब 'ऊपरकी आमदनी' गौरवकी वस्तु नहीं थी और व्यापार-में भी इतना छल नहीं घुस सका था। उस समयतक 'ब्लैक मार्केट' शब्दने जन्म नहीं लिया था।

'मैं तो व्यापारी हूँ और व्यापारमें आप जानते ही हैं कि कुछ 'कच्चा-पक्का' करना पड़ता है।' जिनका कोट गया था, वे कुछ रुष्टसे स्वरमें बोले—'किन्तु इनके रुपये भी मेरी जेबमें थे और अपने कार्यालयमें इनके-जैसा हाथका शुद्ध कर्मचारी दूसरा नहीं है। इन्होंने वेतनके अतिरिक्त प्रसन्नतापूर्वक आये उपहार भी कभी स्वीकार नहीं किये।'

मैं अपनी भूल समझ गया। जो बात मैंने कोट चुरानेवालेको लक्ष्यकर कही थी, उसका आघात मेरे साथीको लगा। इस समय उनसे ऐसी बात कहना सर्वथा अशोभनीय था। साथ ही उन्होने जो तथ्य उपस्थित किया, उसने मेरी धारणाको झकझोर दिया।

'आप सचमुच प्रशंसनीय हैं।' उन ईमानदार कर्मचारीकी ओर मैंने देखा—'आपकी अर्थ-हानि है आश्चर्यकी ही बात। अपने कार्यालयमें आप सम्भवत: सबसे अधिक परिश्रम करनेवाले भी होंगे।'

'परिश्रम तो मैं सबसे कम कर पाता हूँ।' वे बोले—'परिवार बड़ा है। प्राय: समयपर पहुँच नहीं पाता और थोड़ा सुस्त भी हूँ; किंतु हमारे मैनेजर बड़े अच्छे स्वभावके हैं। वे मुझे मानते भी बहुत हैं।'

'तो यह बात है, आप श्रमकी चोरी करते हैं।' मेरा समाधान हो गया था। वैसे मैं इतना अशिष्ट नहीं था कि यह बात मुखसे कहता। मुझे तो अपने दोनों साथियोंको आश्वासन देना था और वह उस समय मेरा कर्तव्य था।

'चोरी तो चोरी है।' धन चुराया तो और उचित श्रम किये बिना पारिश्रमिक ले लिया तो, चोरी तो बिना अनुमति एक इलची उठा लेना भी है।' मेरे मनने कहा—'जो किसी प्रकारकी चोरी नहीं करेगा, उसे जीवनमें आर्थिक संकट नहीं सहना पड़ेगा।' मेरी इस धारणाके प्रतिकूल अभीतक मुझे कोई प्रमाण नहीं मिला।

अभय

गङ्गोत्तरीसे गङ्गाजी नहीं निकली हैं, यह बात वे सब लोग जानते हैं जो वहाँ गये हैं अथवा जानेवालोंसे मिले हैं, उनके विवरण पढ़े हैं। गङ्गाजी गोमुखसे प्रकट हुई हैं। वैसे वे निकली तो हैं नारायणके चरणोंसे—भौतिकरूपमें भी उनका हिमस्रोत (ग्लेशियर) नारायण पर्वतके चरणोंसे चलकर शिवलिङ्गी शिखरके ऊपर होता गोमुखतक आया है। गङ्गोत्तरीमें तो गङ्गाजीकी मूर्ति है।'

गोमुख गङ्गोत्तरीसे गत वर्ष १८ मील दूर था। कुछ वर्ष पूर्व यह दूरी १२ मील थी। हिमालयका हिम पिघल रहा है, इसलिए गोमुख पीछे हट रहा है। हो सकता है कि कुछ शताब्दी पूर्व गोमुख गङ्गोत्तारीमें रहा हो। गङ्गाजी तब गङ्गोत्तारीमें हिमस्रोतसे प्रकट होती हों।

'यह ऊनी चद्दर मैंने रीछसे झपट ली है।' यह बात एक साधुने बतलायी। वे गङ्गोत्तारीसे चार-छ: मील ऊपर गोमुखकी ओर रहते हैं। गोल छोटे-बड़े पत्थरोंपर लाठीके सहारे कूदते-उछलते वहाँतक जाना पड़ता है। गोमुखके लिए कोई मार्ग नहीं है। गङ्गाजीके किनारे-किनारे पत्थरोंपर होकर ही जाना पड़ता है।

उधर रीछ बहुत हैं वनमें और रीछोंसे भी भयंकर

है शीत। पत्थरोंपरसे पैर फिसले तो केवल सिर फूटेगा या शरीर गङ्गार्पित हो जायगा, कोई कह नहीं सकता। दिन चढ़ते ही शिखरोंसे मनों भारी हिमशिलाएँ तोपसे छूटे गोलोंके समान गड़गड़ाती गिरने लगती हैं।

इतना सब है; किंतु प्रतिवर्ष दस-पाँच साहसी यात्री गङ्गोत्तारीसे गोमुख हो आते हैं। इच्छा रहते हुए भी मैं नहीं जा सका। मेरे एक साथीको गङ्गोत्तारीमें न्यूमोनिया हो गया। उनका ज्वर दूर होनेतक मुझे वहीं रुकना पड़ा एक सप्ताह।

उसी सप्ताह युवकोंका एक समुदाय गोमुख जाकर लौटा। उन्होंने बताया कि मार्गमें ऊपर एक साधु कुटी बनाकर रहते हैं। लौटते समय वे रात्रि-विश्राम वहीं करके आये हैं।

रीछने किसी यात्रीका ऊनी चद्दर छीन लिया होगा या हिमके आखेट किसी यात्रीका चद्दर उसे पड़ा मिल गया होगा। ऐसे वस्त्रको रीछ वृक्षोंकी डालियोंमें लपेट-कर अपने लिए आवास बना लेता है। साधु लकड़ी एकत्र करने गये तो वृक्षपर लिपटी ऊनी चद्दर देखकर चढ़ गये और उतार लाये। रीछकी अनुपस्थितिमें ही वे चद्दर ला सके थे।

किंतु उन साधुसे भी अधिक अद्भुत साहसी हैं हमारे मार्ग-दर्शक। वे इधरसे सीधे दो बार बद्रीनाथ गये हैं। इस वर्णनने मुझे आकृष्ट किया। मैं गङ्गोत्तारीमें उनसे परिचित हो चुका था। अतएव उनसे ही सब विवरण सुननेका मैंने निश्चय किया।

× × ×

'द्वितीयाद्वै भयं भवति।' संन्यासीके लिए यह श्रुति उद्धृत कर देना सहज स्वाभाविक है; किन्तु उनके-जैसा सचमुच निर्भय संन्यासी जब यह श्रुति उद्धृत करता है तो श्रुतिका अर्थ सहज बोध-गम्य हो जाता है।

वे तरुण हैं, सुशिक्षित हैं, विनम्र हैं। सुदृढ़ शरीर, साँवला रंग, बड़े-बड़े नेत्र। पहिले उनका आश्रम था कश्मीरके उस भागमें जो अब पाकिस्तानके हाथमें है।

'नारायण, उस समय मनुष्य धर्मोन्मादमें रीछसे अधिक भयंकर हो गया था।' उन्होंने बताया 'मुझे अकेले पैदल आना पड़ा। मैंने भारतीय सीमामें पहुँचने-तक जो कुछ देखा—छुरे रक्त-सने और उन्मादमें दौड़ती-चिल्लाती हत्याके लिए आतुर भीड़। उस समय मनुष्यमें पता नहीं कहाँके दानव घुस गये थे।'

'आपको किसीने कुछ कहा नहीं?' मैंने पूछा।

'तुम जानते ही हो कि संन्यासीके चोटी नहीं होती!' वे खुलकर हँसे—'मेरे कपड़े मैले हो रहे थे। दाढ़ी बढ़ रही थी। मेरी ओर किसीने आँख उठाकर देखना आवश्यक नहीं माना।'

'आपको भय नहीं लगा एकाकी उन्मत लोगोंके बीचमें-से निकलनेमें?'

'भय तो दूसरेसे लगता है।' उन्होंने समझाया—'वे अपने स्वरूप ही तो थे। अपनेसे भिन्न कोई हो तो भय लगे। देहके लिए ही लोगोंको भय लगता है; किन्तु देह तो मैं नहीं हूँ और देह मैं चाहूँ तो क्या सदा बना रहेगा? दो बार तो देह नष्ट नहीं होता। वे तो फिर

भी मनुष्य थे—पर्वतोंसे लुढ़कती हिमशिलाएँ...'

'आप दो बार गोमुख होकर सीधे बद्रीनाथ गये हैं ?' मैंने उन्हें बीचमें ही रोक दिया। क्योंकि मैं उनसे मिला ही था यह यात्रा-वर्णन जानने। बात भिन्न प्रसंग-पर जा लगी थी।

'एक बार—पहिली बार अपने कुतूहलवश और दूसरी बार कुछ अन्वेषकोंके साथ उनके आग्रहके कारण।' उन्होंने बताया—'मार्ग इधर गोमुखसे ऊपरतक और उधर स्वर्गारोहणसे बद्रीनाथतक कठिन है। इतने विकट मार्गकी यात्रा दोनों ओरसे यात्री प्रायः करते हैं। जहाँ-तक वे पहुँचते हैं, वहाँसे मील-दो मील आगे बढ़कर मार्ग सरल हो जाता है। ऊपर सपाट पठार है। सीधे गोमुखसे बद्रीनाथके मार्गमें स्वर्गारोहणके नीचे दूसरे दिन ही मैं पहुँच गया था।'

जिस मार्गमें कुछ गज चलना भारी हो जाता है, उसमें मील-दो मीलकी चर्चा वे ऐसे कर रहे थे, जैसे मैदानके मील-दो-मील हों।

'शिखरोंसे हिमशिलाएँ गिरती ही रहती है। कच्चे पर्वत भी हैं, जिनपर पेटके बल सरककर चढ़ना पड़ता है। छोटे-बड़े पत्थरोंपर कूदते चलनेका तो मार्ग ही है। कहीं-कहीं रीछ भी मिल जाते हैं।' वे बड़े आनन्दसे सुना रहे थे—'यह भगवती पार्वतीके पिताका गृह है। यहां तो शिला, हिम, जल और वन्यपशु। किन्तु दिव्य धरा है। यहाँ कहीं गिरकर, हिमखण्डसे दबकर या रीछके हाथों देह नष्ट भी हो जाय—हिमालयकी गोदमें मृत्यु

सौभाग्यसे ही मिलती है। हस्तिनापुरका राजसदन छोड़-कर धर्मराज भाइयोंके साथ यहीं मरणका वरण करने आये थे।'

'मरणका वरण' किसी कमरेमें अग्निके समीप ऊनी कपड़े ओढ़कर, कम्बलमें लिपटे बैठे मेरे समान इस बातको सुननेमें मनको उत्सुकता हो सकती है; किन्तु सचमुच गिरती शिलाओंके मध्य चट्टानोंपर कूदते-उछलते जानेवाले यात्री— मैंने एक सिहरन अनुभव की इस स्मरणसे।

× × ×

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्या-
दीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।

उन्होंने कदाचित मुझे श्रीमद्भागवतका पाठ करते किसी दिन देख लिया था। हो सकता है कि वे स्वयं भी भागवतका पाठ करते हों; क्योंकि मैं उनकी कुटिया-में छोटी चौकीपर त्रिभङ्ग-सुन्दर, मयूरमुकुटीका चित्र देख आया हूँ।

'मनुष्य परमात्माको छोड़कर दूर हट गया, उसने अपना मुख ईश्वरकी ओरसे दूसरी ओर कर लिया, अतः उसकी स्मृति उलटी हो गयी। उसने अपनेसे सर्वथा भिन्नको अपना स्वरूप मान लिया और इसीलिए सर्वत्र वह डरने लगा।' उन्होंने गम्भीरतापूर्वक मेरी ओर देखा।

'स्मृति उलटी हो गयी?' मैंने पूछा।

'तत्त्वज्ञानकी बात छोड़ भी दें तो भी इस देहमें तुम्हारा क्या है ? इसके परमाणु क्या प्रतिपल बाहर नहीं जा रहे हैं ? यह कोई बात है कि पेटमें रही विष्ठा मैं और बाहर निकला अपवित्र। इस शरीरके अतिरिक्त और किसीको कोई मार सकता है ?'

'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।'

उनके बिना कहे ही मुझे गीताके कई श्लोक स्मरण हो आये।

'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया' जीव ईश्वरका सखा है, इसमें भी कोई संदेह है क्या ?' वे बोलते जा रहे थे—'कोई ऐसा भी स्थान है जहाँ ईश्वर नहीं है ? ईश्वर सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान है और सर्वत्र है। तब उसके सखाके लिए कहीं किसी परिस्थितिमें कोई आपत्ति किस गुफासे निकलेगी ?'

मैं क्या उत्तर देता ? कोई भी क्या उत्तर दे सकता है ? वे ठीक नहीं कह रहे थे, यह कैसे कहा जा सकता है ?

'मूर्खताकी बात—शिष्ट शब्दमें अज्ञान कहो।' वे अब उठ रहे थे कहीं जानेके लिए। मैं भी उठ खड़ा हुआ। खड़े-खड़े उन्होंने अपनी बातका उपसंहार किया—'परमात्माके सम्बन्धमें हम सोचते नहीं, अपने सम्बन्धमें भी नहीं सोचते, इसीसे यह मूर्खता सिरपर सवार है। भगवान्से दूर रहनेके कारण यह उलटी बुद्धि हो गयी है कि जिसमें अपना कुछ नहीं है, उस देहको अपना

मान लिया है और इस देहमें अभिनिवेशके कारण ही सारे भय हैं।'

मैंने उन्हें प्रणाम किया और लौट आया। अब भी मुझे उनके शब्द स्मरण आते हैं—'देहके सम्बन्धमें, अपने सम्बन्धमें, परमात्माके सम्बन्धमें विचार करो। भय तो मूर्खता है। ठीक-ठीक देहके भी तत्त्वपर विचार करोगे, प्रारब्धको भी समझ लोगे तो भय भाग जायगा सदा-सर्वदाके लिए।'

'तत्त्वका ठीक विचार करनेसे भय भाग जाता है।' बड़ा सुन्दर सूत्र है और मेरे मानसनेत्रोंके सम्मुख हैं वे अभय पुरुष।

तामसी श्रद्धा*

'आपको वह मानता है। आप उसे समझा दीजिये। वे मेरे सम्मान्य हैं, पढ़े-लिखे हैं, समझदार हैं। उनके चरित्रपर कभी किसीने कोई शङ्का नहीं की है और सत्सङ्गमें उनकी रुचि है।' वे मेरे पास अपने पुत्रकी बात लेकर आये थे—'वह किसी औरकी बात नहीं सुनता।'

'बात क्या है?' उनके पुत्र सुशील हैं, पितृभक्त हैं। उनके जैसा सच्चरित्र व्यक्ति मिलना कठिन है। वे कोई अयोग्य हठ करेंगे, यह बात सोचना भी कठिन था मेरे लिए।

'घरकी स्थिति ठीक नहीं है।' मैं जानता था कि आजकल वे आर्थिक कष्टमें हैं। एक सम्भ्रान्त परिवार एक सीमासे अधिक अपना व्यय घटा नहीं पाता। पिता तथा घरके दूसरे सदस्य बहुत सम्पन्न जीवन व्यतीत करनेके अभ्यस्त हो चुके थे और अपना स्तर कम करना उनके लिए बहुत कठिन था। घरकी व्यवस्थाका भार था उनके ज्येष्ठ पुत्रपर और वे अत्यन्त सादगीके पक्ष-पाती थे।

'बात तो आपकी ठीक है।' मैंने नम्रतापूर्वक निवेदन किया। 'किन्तु भाई श्री ··· कोई आपको कष्ट देने-

---

* तामस्यधर्मे या श्रद्धा

वाली बात कहेंगे या आपको अप्रिय लगनेवाला कोई कार्य करेंगे, यह आशङ्का मुझे नहीं है।'

'ऐसी कोई बात नहीं है।' वे पुत्रकी प्रशंसा करने लगे और कोई भी पिता अपने ऐसे सच्चरित्र, उदार, विनयी एवं विद्वान पुत्रपर गर्व कर सकता है। 'वह मेरे सामने तो मुख ही नहीं खोलता। स्वयं टाट-जैसे मोटे कपड़े पहिनता है; घरमें जिसे जो चाहिये, वह लानेमें कभी इधर-उधर नहीं करता। उसमें न कोई हठ है और न कोई दूसरा दुर्गुण। वह तो गायके समान सीधा है।'

'तब मैं उन्हें क्या समझा दूँ?' मुझे आश्चर्य भी हुआ और कुतूहल भी।

'देखिये, तीन कन्याएँ हैं और हमारे समाजमें कन्याके विवाहका जो व्यय है, उसे आप जानते ही हैं।' वे बोले--'दूसरे भी व्यय बड़ी कठिनाईसे चल रहे हैं। ऋण हो गया है अपने ऊपर, यह आपसे कहनेमें कोई संकोचकी बात तो है नहीं।'

'मैं बहुत कुछ परिचित हूँ परिस्थितिसे।' इतना घनिष्ठता हो गयी थी उनसे कि उनके बतानेसे बहुत पूर्व मुझे इस स्थितिका आभास हो चुका था।

'उसे इन सबकी चिन्ता ही नहीं है।' यही बात कहने वे आये थे, यह अब स्पष्ट हो गया।

'चिन्ता तो उन्हें है, किन्तु चिन्ता करके वे कर क्या सकते हैं?' मैंने पूछा। 'अपने प्रयत्नमें तो वे कोई त्रुटि करते नहीं।'

'आजकल तो कपड़ेके व्यवसायमें लक्ष्मीकी वर्षा

हो रही है !' अब वे खुल गये। 'वह चाहे तो लाख-दो-लाख छः महीनेमें बन जायँगे। जो काम सभी कर रहे हैं, उसमें क्या अनुचित रहा है ? व्यापारमें तो झूठ भी बोलना पड़ता है, कुछ इधर-उधर भी करना पड़ता है। आप जानते ही हैं कि राजा हरिश्चन्द्र बननेसे व्यापार नहीं चल सकता। आज इतने कर सरकारने लगा दिये हैं कि कर-विभागको बनावटी बहीखाता न दिखाया जाय तो घरसे ही कुछ देना पड़े।'

'चोरबाजारी, छल एवं असत्यके भाई श्री······ कितने विरुद्ध हैं !' मैंने दबे स्वरमें कहा। 'उनकी ईमानदारी तथा सत्यप्रियताकी तो पूरा नगर प्रशंसा करता है।'

'इस प्रशंसासे तो पेट भरता नहीं।' वे तनिक उत्तेजित स्वरमें बोले। 'बड़े-बड़े आदर्श पुरुष भी आज यही करते अथवा कराते हैं ; किन्तु वह है कि इस विषयमें मेरी कुछ सुनता ही नहीं। कुछ कहो, कितना भी बिगड़ो —गूँगा बना रहेगा। आप उसे समझा सकेंगे, इस आशासे आपके पास आया हूँ।'

'मैं प्रयत्न करूँगा !' वे मेरे सम्मान्य हैं। उनसे विवाद करनेका मैं साहस नहीं कर सकता। उन्होंने उदाहरणके रूपमें ऐसे श्रद्धेय पुरुषोंके नाम लिये थे— उस बातने मुझे स्तब्ध कर दिया था। उन्हें किसी प्रकार आश्वासन देकर विदा करनेके अतिरिक्त मेरे पास और उपाय भी क्या था।

× × ×

'भाई ! आपके पिताजी आये थे मेरे पास।' मिलने-पर मैंने भाई श्री ·····से निवेदन किया। 'आप उनकी कुछ बातें नहीं मानते। वे चाहते हैं कि मैं आपको समझाऊँ, किन्तु आपको समझाने-जैसी योग्यता मुझमें है, यह मैं देख न रहा हूँ। अब आप जैसा कहें।'

'सबके भरण-पोषणका भार विश्वके संचालकपर है। वह जगन्नियन्ता मङ्गलमय है, सर्वज्ञ है, दयामय है, हमारा सुहृद् है और सत्यसंकल्प है।' वे पर्याप्त गम्भीर होकर बोल रहे थे। 'मैंने तो आपसे ही सुना है, ग्रन्थोंमें भी यही सब लिखा है, सत्पुरुष भी यही कहते हैं। इसलिए मैंने इसपर विश्वास कर लिया है।'

'आपका विश्वास सत्य नहीं है, यह कहनेवाला तो अनीश्वरवादी ही हो सकता है।' मेरे स्थानपर आप होते तो आपके समीप भी यही उत्तर था।

'सत्य-संकल्प भगवान्का संकल्प अन्यथा नहीं किया जा सकता—मनुष्यके किसी प्रयत्नसे नहीं।' उन्होंने उसी गम्भीरतासे कहा। 'हमारे मङ्गलके लिए उनका संकल्प होगा ही।'

'पुरुषार्थको मैं प्रधान मानता हूँ।' मैंने एक मार्ग निकाला। 'कर्म करनेमें मनुष्यकी स्वतन्त्रता भगवान्ने स्वयं गीतामें स्वीकार की है।'

'आप ही मुझे बहकाना चाहेंगे तो सहायता कौन देगा।' उनका स्वर उलाहनाभरा था। 'कर्मका फल पानेमें तो मनुष्य स्वतन्त्र है नहीं। 'बीज-वृक्षन्याय' कर्मवादका प्रख्यात है। इस वर्ष बोयी फसलका फल आगे

और पहली फसलका फल अब। इसी तरह पूर्वके कर्मों-के उस अंशका जो प्रारब्धके हेतु हैं, इस जन्ममें फल भोगना है और इस जन्मके कर्मोंका फल आगामी जन्मोंमें।'

'आपसे विवाद करके जीता नहीं जा सकता।' मैंने हसकर प्रसङ्ग टालनेका प्रयत्न किया।

'बहुत-से लोग आज घूसखोरी, चोरबाजारी या छल-कपटसे बहुत अधिक धन कमा रहे हैं; यही बात हमें प्रलोभित करती है। किंतु उन्हें जो सम्पत्ति मिल रही है, वह उनके पूर्व पुण्यका फल है।' उन्होंने उसी गम्भीरतासे कहा—'बहुत-से ऐसे लोग भी तो हैं—सम्भवत: वे पहिलोंसे अधिक हैं—जो झूठ-कपट, चोर-बाजारी, चोरी या दूसरे सभी अधर्म करनेमें कुछ उठा नहीं रख रहे हैं, किंतु बिल्कुल कंगाल बने हैं। भरपेट रोटीकी भी ठीक व्यवस्था वे नहीं कर पाते।'

'बात आप सवासोलह आने ठीक कह रहे हैं।' उस समयतक सरकारने सौ पैसेका रुपया घोषित नहीं किया था और न आनोंकी सत्ता समाप्त करनेका निर्णय किया था, अन्यथा यह लोकोक्ति किसी दूसरे रूपमें प्रयुक्त होती।

'पिताजीकी आज्ञा मान लूँ—इसका अर्थ तो हुआ कि मैं स्वयं उस आज्ञासे जो अधर्म करूँगा, उसके प्रेरक होनेके कारण मुख्य पापके भागी वे होंगे।' उन्होंने बड़े भावभरे स्वरमें कहा। 'उनकी आज्ञाका उल्लघंन करने-से कोई पाप होता भी है तो मुझे होता है; उसका फल मैं भोग लूँगा। किंतु मेरे साथ वे भी पापके भागी बनें

ऐसा काम करनेको आप मुझे नहीं कह सकते।'

'मैं आपको कुछ कह सकूँ, ऐसा मैं स्वयं नहीं हूँ।' वे बहुत संकुचित होते हैं मेरी ऐसी बातोंसे; किंतु बात तो यही सच है। हमलोगोंकी उस दिनकी चर्चा यहीं समाप्त हो गयी। शाम हो रही थी और वे लाख काम छोड़कर संध्याके समय ही संध्या करनेके अभ्यासी हैं।

× × ×

'आप भगवान्पर तो विश्वास करते हैं?'

'करता तो हूँ।'

'पुनर्जन्मपर भी विश्वास करते हैं?'

'करता हूँ।'

'प्रारब्धपर भी?'

'जी; किंतु आज आप यह सब क्यों पूछ रहे हैं?' उनका प्रश्न स्वाभाविक था। वे मेरे सम्मान्य हैं। उनके घर मैं स्वयं गया, इसमें तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं; किंतु उनसे मिलते ही मैं ऐसे अटपटे प्रश्न करूँ—यह धृष्टता ही तो है। वैसे उनका मुझपर इतना स्नेह है कि मेरी धृष्टतासे वे कभी रुष्ट नहीं होते। उनके इस स्नेहने ही मुझे इतना धृष्ट बनाया भी है।

'मान लीजिये कि संसारके सब लोग ईश्वरको न मानें।'

'भले न मानें। कलियुगमें यह असम्भव नहीं है।' वे बोले। 'किंतु विश्वके समस्त उलूक सूर्यकी सत्ता नहीं मानते तो क्या सूर्यकी सत्ता असिद्ध होती है? ईश्वर सत्य हैं, अतः हैं। किसीकी मान्यता क्या कर सकती है इसमें।'

'और यदि विश्वका जनमत प्रारब्धको न माने ?' मैंने दूसरा प्रश्न कर दिया।

'सो तो आज भी नहीं मानता।' वे हँस पड़े। 'विश्वमें ईसाई, मुसलमान आदि अधिक हैं। अनीश्वर-वादी भी पर्याप्त हैं। हिन्दू ही पुनर्जन्म तथा प्रारब्ध मानते हैं और विश्वमें उनकी जनसंख्या कम है। उनमें भी अब नवशिक्षितोंमें अधिक लोग प्रारब्धपर विश्वास नहीं रखते, किन्तु किसीकी मान्यतासे सत्य बदला नहीं करता। प्रारब्धका सिद्धान्त तो एक सत्य है।'

'कुछ लोग—बहुत गिने-चुने लोग हैं, जो भगवान्पर तथा प्रारब्धपर श्रद्धा करते हैं।' मैंने कहा। 'जो लोग इनको मानते भी हैं उनमें भी अधिक ऐसे ही हैं, जो केवल मुखसे इन्हें मानते हैं। व्यवहारमें तो वे भगवान् या प्रारब्धकी अपेक्षा पापपर—असत्य, छल-कपट, बेईमानी आदिपर श्रद्धा करते हैं।'

'इसीका नाम तो अज्ञान है।' वे खेदपूर्वक बोले। 'मायामोहित मनुष्य नहीं समझता कि पापपर आस्था करके वह केवल अपने पतनका मार्ग बना रहा है।'

'मैंने भाई श्री····· से आपके आज्ञानुसार बात की थी।' अब मैं अपने मूल विषयपर आ गया। 'वे कहते हैं कि मैं पापकी अपेक्षा प्रारब्धपर तथा भगवान्के विधानपर अधिक श्रद्धा करता हूँ।'

'वह ठीक कहता है।' वे अब समझे कि मैं आज उनसे अटपटे प्रश्न क्यों कर रहा था। किंतु वे विद्वान् हैं, समझदार हैं, सत्सङ्गी हैं। ऐसा व्यक्ति दुराग्रही

नहीं हुआ करता। बड़ी सरलतापूर्वक वे बोले—'मेरे चित्तकी दुर्बलता है कि मैं उसे बार-बार दूसरोंके समान अनुचित मार्ग अपनानेको कहता हूँ। आज आपने मेरी भूल सुझा दी है। अब मैं उससे कभी कुछ नहीं कहूँगा।'

'जो सत्य एवं ईमानदारीपर स्थिर रहते हैं, व कष्ट ही पाते हैं।' यह लोकधारणा मिथ्या सिद्ध हो गयी। थोड़े ही समयमें कुछ ऐसे कार्य उन्हें अकस्मात् प्राप्त हो गये, जिनसे उनका आर्थिक संकट तो दूर हुआ ही, वे पर्याप्त सम्पन्न गिने जाने लगे।

राजसी श्रद्धा*

'भारतकी जनसंख्या बराबर बढ़ती जा रही है। इस बढ़ती हुई जनसंख्याको भोजन देनेकी समस्या कम विकट नहीं है।' मैं यात्रा कर रहा था रेलके द्वितीय श्रेणीके डिब्बेमें। उसमें एक स्वच्छ खद्दरधारी पुरुष सामनेकी बैठकपर विराजमान थे और बड़े उत्साहसे वे अपने पास बैठे एक दूसरे सज्जनको समझा रहे थे कि अन्नके उत्पादनके लिए सरकारकी क्या-क्या योजना है।

'आप बुरा न मानें तो मैं एक घटना सुनाऊँ।' एक गरिक वस्त्रधारी संन्यासी बीचमें बोल उठे।

'इसमें बुरा माननेकी तो कोई बात नहीं।' उन खद्दरधारी महोदयको कुछ बुरा अवश्य लगा; क्योंकि नहर-बाँध-योजनासे लेकर चकबंदी तककी सब सरकारी योजनाओं एवं उनके लाभ वे समझा देना चाहते थे; किंतु उनके श्रोताको उनके व्याख्यानकी अपेक्षा साधुसे घटना सुनना अधिक आकर्षक जान पड़ा और वे उन संन्यासी महोदयके अभिमुख हो गये।

यात्रा लंबी थी। हमारे डिब्बेमें कोई खड़ा नहीं था और न कोई लेट लगानेको ही स्थान पा सका था। इस प्रकार बैठे-बैठे कई घण्टे व्यतीत करनेका कुछ अच्छा

---

* कर्मश्रद्धा तु राजसी

साधन नहीं था। जो पुस्तकें तथा समाचारपत्र लिये गये थे, वे पढ़े जा चुके थे। अब और पढ़नेकी इच्छा नहीं हो रही थी। सब संन्यासीजीकी घटना सुननेको उत्सुक हो गये।

'हम सब सुनना चाहते हैं।' एक साथ कई स्वर आये। इसका अर्थ था कि कुछ उच्चस्वरसे बात कही जाय।

'घटना मेरी नहीं है।' संन्यासी महोदय बोले। 'एक बार मुझे एक बहुत बूढ़े जटाधारी वैष्णव साधु मिले थे। नासिक-कुम्भके अवसरपर उन्होंने यह घटना मुझे सुनायी थी।'

'वे कहते थे कि अपनी युवावस्थामें एक बार वे बद्री-नाथकी यात्रा करने गये थे। लौटते समय पाण्डुकेश्वरसे भुशुण्डिकुण्डकी ओर चले गये और कोई मार्गदर्शक न होनेसे उधर पहाड़ोंमें भटक गये।' संन्यासीजीने एक बार सबकी ओर देखा—'चार दिन भटकते रह गये पर्वतोंमें। वहीं उन्हें महर्षि लोमशके दर्शन हुए।'

अब सब लोग बहुत उत्सुक हो गये थे। कुछ लोग कुछ झुक आये थे और एक सज्जन तो अपने स्थानसे उठकर संन्यासीजीके पास पड़ी हुई सन्दूकपर ही आ बैठे।

'उन साधुने सत्सङ्गकी बात तथा अपने अकस्मात् एक गुफामें शयनकी बात सुनायी। यह भी सुनाया कि उन्हें महर्षिने एक दिव्य कन्द दिया, जिसे भोजन कर लेनेसे भूख तो गयी ही, थकावट भी सर्वथा चल गयी।

'सबसे मुख्य बात जो साधुने बतायी'—एक क्षण संन्यासीजी रुके—'उन्होंने महर्षि लोमशसे पूछा था कि पृथ्वीपर यह जो कीड़े-मकोड़ोंके समान मनुष्य बढ़ते जा रहे हैं, इनके भोजनकी क्या व्यवस्था होगी ?'

अब हम सबमें जो उत्सुकता जाग्रत हुई, वह मत पूछिये। वे खद्दरधारी सज्जन, जो अबतक कुछ खीझे हुए-से चुपचाप बैठे थे अपना समाचारपत्र उलटते, उन्होंने भी समाचारपत्र एक ओर रख दिया था।

'आप सब जानते ही हैं कि महर्षि लोमश अमर हैं।' संन्यासीजी बोले—'प्रलयमें भी उनका नाश नहीं होता। उन्होंने उन वैष्णव साधुको किसी प्राचीन कल्पकी एक बात सुना दी। अब महर्षिकी बात आप सुन लें।'

× × ×

समुद्रके मध्यमें एक महाद्वीप था। बड़े बुद्धिमान् एवं उद्योगशील पुरुष थे वहाँके। उन बुद्धिमान लोगोंकी प्रतिभाने जो चमत्कार दिखलाये थे, आजके मनुष्य उसका अभी स्वप्न भी नहीं देख पाते हैं। वे मृत्युपर विजय तो नहीं पा सके थे; किंतु रोगों एवं बुढ़ापेको उन्होंने अपने महाद्वीपसे सदाके लिए विदा कर दिया था। इसका फल यह हुआ कि मृत्यु-संख्या बहुत थोड़ी रह गयी महाद्वीपकी जनसंख्या प्रति पांचवें वर्ष दुगुनी होती चली गयी।

'बाप रे !' वे खद्दरधारी महोदय चौंके।

'महाद्वीपमें वृक्ष बचे ही नहीं, केवल भवनोंकी छतों एवं खिड़कियोंमें लगाये कुछ पुष्प-लताओंके पौधे रह गये। महाद्वीपका एक कौतुकालय था और वहीं पशु-पक्षी देखे जा सकते थे। पूरे महाद्वीपमें गगनचुम्बी भवन तथा स्नानके लिए आवश्यक जलाशय रह गये थे। यानोंके संचालनकी व्यवस्था उन बुद्धिमान् लोगोंने भूमिके नीचे कर दी थी और उनके आकाशचारी यान भवनोंकी छतोंपर उतरते तथा वहींसे उड़ते थे। भूमिके ऊपर बहुत कम पथ रह गये थे। केवल इसलिए कि उनसे समीपके भू-गर्भमें स्थित किसी यानको पानेके लिए जाया जा सके।'

'वे भोजन क्या करते थे?' उन खद्दरधारी महोदयने पूछा।

'मैं महर्षि लोमशकी कही बात सुना रहा हूँ।' संन्यासीजी बोले। 'आप कुछ क्षण धैर्य रक्खें।' और वे फिर महर्षिकी बात सुनाने लगे—

'वे इस प्रकारके वस्त्र पहनते थे जो न फटते थे, न मैले होते थे। केवल रुचिके कारण वे वस्त्रोंको बदल लिया करते थे। वैसे उनके वस्त्र विभिन्न रंगोंके और उत्तम थे।

'उन्होंने अद्भुत यन्त्र लगा रक्खे थे। महाद्वीपका एक भाग विभिन्न प्रकारके यन्त्रोंसे भरा था। उनके यन्त्र दूध, दही, घी, फल, मेवे और वे सब आवश्यक वस्तुएँ बना देते थे, जिनकी उन लोगोंको आवश्यकता थी।

'उन अद्भुत मनुष्योंने कुछ ऐसी व्यवस्था कर ली

थी कि उनके यहाँ न आँधी आ सकती थी, न प्रबल वर्षा होती थी। वे जब चाहते थे—मेघ उत्पन्न करके रिमझिम वर्षा करा लेते थे। शीत कितना पड़ना चाहिये और उष्णता कितनी होगी, यह उनकी इच्छापर निर्भर था।'

'उनके यन्त्रोंके लिए कच्चा माल कहाँसे आता था?' खद्दरधारी महोदयने पूछा।

'आपने फिर बीचमें बाधा दी है।' संन्यासीजी तनिक असंतुष्ट हुए। 'महर्षिने जो बताया है—मैंने साधुसे सुना और वह बता रहा हूँ। किसी प्रश्नका उत्तर मेरे पास नहीं है।'

'आप वही बतावें!' दूसरे लोगोंने विनय की।

'उन लोगोंकी कर्ममें प्रबल निष्ठा थी। उद्योगको ही वे जीवनका सर्वस्व मानते थे। उद्योग, अथक उद्योग इसकी परम्परा बन गयी थी उनमें। परिश्रम करनेमें उन्हें सुख मिलता था। उनके यहाँ 'आलस्य' शब्द ही नहीं था।

'अनन्त समुद्र उनका उत्पादन-क्षेत्र था। उनके यान समुद्रके जलके भीतर, सतहपर एवं आकाशमें अबाध चलते थे। समुद्रमें उनके गहरे डूबनेवाले यान घूमते रहते थे और वहाँ उनकी कृषि होती थी—विचित्र प्रकारकी कृषि। इन समुद्री पौधों एवं प्राणियोंके उत्पादन-पालनसे उनके यन्त्रोंके लिए सामग्री उपलब्ध होती थी और उस सामग्रीसे वे यन्त्र दूध, घी, वस्त्र, फल, मेवे, अन्न एवं धातु—सभी उत्पन्न किया करते थे।

'उन लोगोंकी जनसंख्या बढ़ती जा रही थी। महाद्वीप उनके लिए छोटा होता जा रहा था ; किन्तु उनका उत्साह अदम्य था। उनके यान अब चन्द्र, मङ्गल, बुध आदि ग्रहोंमें पहुँचने लगे थे और उन्होंने अन्वेषण प्रारम्भ कर दिया था उपनिवेश बनाने योग्य भूमिका।

'उन लोगोंकी यह चरमोन्नतिका वर्णन है।' संन्यासी-जीने फिर तनिक विश्राम लिया।

× × ×

'उनके यहाँ साधु-संन्यासी निश्चय नहीं रहे होंगे।' खद्दरधारी महोदयने व्यङ्ग किया।

'एकदम नहीं !' संन्यासीजीने बिना अप्रतिभ हुए उत्तर दिया। 'वे कर्मको ही आराध्य माननेवाले लोग थे तो उनके यहाँ कर्मत्यागी कोई हो ही कैसे सकता था। वैसे महर्षि लोमशने बताया था कि उनके यहाँ भी उपासना थी। वे लोग प्रायः समुद्रगर्भमें निहित रत्नोंकी प्राप्तिके लिए अपने यन्त्रोंकी अपेक्षा अपनी उपासनापर अधिक निर्भर करते थे। उनके उपास्य थे— यक्ष। यक्षिणी-सिद्ध अनेक थे उस महाद्वीपमें। उनकी यह सिद्धि उनके उद्योगमें बहुत सहायक होती थी।'

'वे लोग सम्भवतः पृथ्वी छोड़कर किसी दूसरे लोकमें जा बसे ?' एक सज्जनने पूछ लिया।

'उन लोगोंका हुआ क्या ?' यह प्रश्न हम सभीके

मनमें था।

'महर्षि लोमशने बताया—' संन्यासीजी कह रहे थे कि 'कर्मकी प्रवृत्ति राजसी प्रवृत्ति है। रजोगुण प्रारम्भमें बहुत सुखद जान पड़ता है, वैभवके बहुत स्वप्न दिखलाता है। यश-ऐश्वर्यका लोभ न हो तो प्रवृत्तिमें प्राणी क्यों पड़े; किंतु रजोगुणका **अन्तिम परिणाम है दुःख एवं विनाश** 'परिणामे विषमिव।'

'तो वे बुद्धिमान् लोग भी यादवोंकी भाँति परस्पर लड़ मरे।' एक वृद्ध पण्डितजीने पूछा।

महर्षिने तो बताया था कि 'उन्होंने ऐसी व्यवस्था कर ली थी कि उनके समाजमें न युद्ध सम्भव रहा था और न डकैती, चोरी आदि अपराध ही।

'तब तो न वे दुखी हो सके, न उनका विनाश ही सम्भव दीखता!' खद्दरधारी महोदय बोले।

'किंतु हुआ यही!' संन्यासीजीने बताया। 'महर्षिका कहना था कि एक रात्रिमें उस महाद्वीपके उस भागमें, जो महाद्वीपका यन्त्रालय था, पृथ्वी फट गयी। एक ज्वालामुखी फूट पड़ा अचानक और यन्त्रोंको जिस प्रकाण्ड शक्तिसे वे बुद्धिमान् मनुष्य चलाते थे, उस शक्तिके भण्डारमें विस्फोट हो गया। दूसरे दिन जब सूर्योदय हुआ, उस महाद्वीपके ऊपर समुद्र हिलोरें ले रहा था। पूरा महाद्वीप उस विस्फोटमें विलुप्त हो गया था।'

'ओह!' हम सभी धक्-से रह गये। एक बड़ा स्टेशन समीप आ गया था। गाड़ीकी गति कम होने लगी थी। संन्यासीजी अपने स्थानसे उठे। उन्होंने अपना बिस्तर

ऊपरसे उतारकर नीचे रक्खा और कमण्डलु हाथमें ले लिया। उन्हें यहीं उतरना था।

'उन वैष्णव साधुने बताया था कि इतनी ही कथा सुनाकर महर्षि लोमश पर्वतोंमें कहीं चले गये थे और फिर ढूँढ़नेपर भी उन्हें मिले नहीं।' संन्यासीजीने ट्रेन रुकते-रुकते कहा—'अतः मुझे भी और कुछ ज्ञात नहीं!'

वे वहीं उतर गये। उनकी सुनायी घटना सत्य है या कल्पित, इस सम्बन्धमें डिब्बेमें बैठे लोगोंके विभिन्न मत थे। आप अपना मत स्वयं स्थिर करें।

सात्त्विकी श्रद्धा

'मैं एक प्रार्थना करने आया हूँ।' जिन्हें लोग 'सरकार' 'अन्नदाता' कहते थकते नहीं थे, वे नरेश स्वयं आये थे एक कंगाल ब्राह्मणकी झोंपड़ीपर। उन्हें भी—जिनकी आज्ञा ही उनके राज्यमें कानून थी और जिनकी इच्छा किसीको भी उजाड़-बसा सकती थी, उन्हें उस मुट्ठीभर हड्डीके दुर्बल ब्राह्मणसे अपनी बात कहनेमें भय लगता था।

'क्या कहना है तुम्हें ?' न सरकार, न अन्नदाता—वह ब्राह्मण इस प्रकार बोल रहा था जैसे नरेश वह है और जो नरेश उसके सामने खड़े हैं, वे उसके भिक्षुक अथवा सेवक हैं। उसे कोई आश्चर्य नहीं हुआ था, जब नरेश उसकी झोंपड़ीपर पधारे थे। उसने उनके स्वागत-सत्कारकी कोई व्यस्तता नहीं दिखलायी थी।

त्यागी, स्वधर्मनिष्ठ ब्राह्मण देवताओंद्वारा भी वन्दनीय है। कोई उसके यहाँ आता है, उसे प्रणाम करता है तो उसपर कोई कृपा नहीं करता। वह कृपा करता भी है तो अपने आपपर करता है; क्योंकि उस तपस्वीके दर्शन एवं अभिवादनसे वह स्वयं पवित्र होता है। उसके अशुभ—अमङ्गल नष्ट होते हैं।

नरेश आये, उन्होंने चरणोंमें मस्तक रक्खा। यह

तो उन्हें करना ही चाहिये था। ब्राह्मणने आशीर्वाद दिया— 'कल्याणमस्तु !'

सचमुच नरेशके लिए ही यह सौभाग्यकी बात थी कि उन्हें दर्शन हुआ था इन विप्रदेवका। प्रातः सूर्योदयके समय संध्या-हवनादि करके जो ग्रामसे मीलभर बाहर चला जाय और लौटे भी दोपहरमें तो फिर स्नान-संध्यामें लगे। भोजन किया और ग्रामसे बाहर। लौटेंगे तो सायंकाल और उस समय भी नित्यकृत्यसे पहर रात गये उन्हें अवकाश मिलेगा। ऐसे किसी दिन नरेश आ गये होते तो दर्शन भी नहीं होना था। यह तो आज पुराण-पाठके अनध्यायका दिन है, इससे वे घरपर मिल गये।

'मेरी बहुत दिनोंकी लालसा है कि आपके श्रीमुखसे श्रीमद्भागवत सुनता।' नरेशने दोनों हाथ जोड़कर बड़ी नम्रतासे प्रार्थना की। 'राजभवन श्रीचरणोंसे पवित्र हो जायगा। आप जब सुविधा देखें और जिन विधियोंकी आज्ञा करें·· ··।'

'अच्छा बहुत हो चुका।' ब्राह्मणके तेजसे उद्दीप्त मुखपर रोषकी किंचित् झलक आयी। 'तुम मेरे यहाँ आये हो, इसलिये मैं तुम्हें शाप नहीं देता। तुम्हारा इतना साहस हो गया है कि तुम त्रिभुवनके स्वामी भगवान् शंकरके कथावाचकसे कथा सुनानेको कहो। सुनो, चन्द्र-मौलिको छोड़कर न मैंने किसीको कथा सुनायी है, न सुना सकता हूँ।'

'मुझे क्षमा करें।' नरेशके पैर काँप रहे थे। जिसकी भौंहोंपर बल पड़नेपर लोगोंका रक्त सूख जाता था,

उसका मुख सूख चुका था। उससे ठीक रीतिसे बोला नहीं जा रहा था—'मुझसे भूल हुई।'

'अच्छा जा !' ब्राह्मण तो क्षमाका साकार रूप है। उसका रोष कितने क्षणका।

'मैं कृतार्थ हो जाता।' नरेशने हाथ जोड़कर प्रार्थना की 'यदि कोई सेवा प्राप्त हो जाती।'

'अन्नपूर्णाके आराध्यका सेवक हूँ मैं।' ब्राह्मण हँसे। 'तूने कंगाल समझा है मुझे ? चल—झटपट चला जा यहाँसे।'

नरेशने बहुतोंको अपने दरबारसे निकलवाया था—राज्यसे भी निकलवाया होगा, किन्तु एक दरिद्र ब्राह्मणने उन्हें आज अपने द्वारपरसे झिड़ककर भगा दिया था और चले जानेके अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं था उनके पास।

× × ×

शहरमें पं० श्रीरामप्रकाशजीको पूछना नहीं पड़ता था। वे न सबसे बड़े धनी थे, न कोई अफसर या लोक-नेता; किंतु शहरका बच्चा-बच्चा उन्हें जानता था। वे सबके परम श्रद्धा-भाजन थे।

वैसे पण्डित रामप्रकाशजीको अपने घरका ही पता नहीं रहता था, बस्तीका तो क्या रहेगा। वे बहुत कम लोगोंको पहचानते थे। सच बात तो यह कि उन्होंने जिनको पहचान लिया था, उन्हें पहचान लेनेपर और

किसीसे जान-पहचान करना आवश्यक नहीं रह जाता।

आजसे तीस वर्ष पूर्वकी बात है। पण्डितजीके पिताका देहावसान हो चुका था, उनकी अन्त्येष्टि-क्रिया समाप्त हुई और पण्डितजीको उदरपूर्तिकी दैनिक क्रियाकी चिन्ता करनी पड़ी। ब्राह्मण पूजा-पाठ करायेगा, कथा सुनायेगा, दूसरा भी कुछ कार्य वह कर सकता है, यह बात पण्डित-जीकी समझमें आनेसे रही। कलियुगमें वे उत्पन्न भले हुए हों, सत्ययुगके सीधे सरल ब्राह्मण थे।

पूजा-पाठ तो किसीको कराना हो और वह बुलावे तब किया जाय। पण्डितजीने श्रीमद्भागवतकी पोथी उठायी और यजमान ढूँढ़ने निकले।

'आजकल तो अवकाश नहीं है। ये व्यापारके दो महीने मुख्य हैं। आप फिर कभी पधारें।'

'इस समय तो हाथ खुले नहीं हैं। लड़कीका विवाह करना है। अगले वर्ष आप पधारें तो सोचा जायगा !'

पण्डितजी जहाँ कहीं गये—वे उन सब सम्पन्न लोगोंके पास गये, जिनकी उदारता उन्होंने सुनी थी और जिनसे उन्होंने कुछ आशा कर रक्खी थी; किन्तु कोई व्यापारमें उलझा था, कोई मुकदमेमें। किसीको बेटीका ब्याह करना था, किसीको मकान बनवाना था। किसीको भी श्रीमद्भागवत सुननेकी सुविधा नहीं मिली उस दिन।

पूरे बारह कोस भटककर शामको लौट रहे थे पण्डित रामप्रकाशजी। दिनभरके भूखे-प्यासे, चार-पाँच सेरकी पोथीका बस्ता बगलमें दबाये, हताश ! यजमानोंको तो दो-तीन महीने या वर्षभर अवकाश नहीं था; किंतु

उनका और उनकी पत्नीका उदर क्या इतना अवकाश देगा ? पेटके गड्ढेमें तो नित्य अन्नकी आहुति देनी ही पड़ेगी।

'मृत्यु किसी क्षण आ सकती है। परलोककी तैयारी हजार काम छोड़कर करनी चाहिये।' यजमानोंको अवकाश नहीं था यह समझनेका और भूखे ब्राह्मणके पास इस लोकमें दो रोटीका उपाय नहीं दीखता था। भिक्षा वह माँग नहीं सकता। इससे तो भूखों मर जाना उसे पसन्द आयेगा।

'बाबा ! आपको तो अवकाश है !' शहरसे लगभग एक मील बाहर निर्जनमें एक शिव-मन्दिर था। पण्डित रामप्रकाशजी लगभग संध्याको सर्वत्रसे निराश लौट रहे थे। मन्दिरमें वे दर्शन करने गये और प्रणाम करके पृथ्वीसे मस्तक उठाते हीं उनको कुछ सूझ गया—'आप सुनिये मेरी कथा। आप मेरे यजमान और मैं आपका कथावाचक।'

उन्होंने स्वयं मन्दिर स्वच्छ किया। एक ओर आसन लगाया और पोथी सम्मुख रखकर कथा बाँचने बैठ गये। जैसे कोई कथावाचक सैकड़ोंकी भीड़को कथा सुना रहा हो—पूरे उच्च स्वरसे, भली प्रकार दृष्टान्तादि देकर, समझाकर अपने योग्यतानुसार पूरी व्याख्या करते हुए पण्डितजी कथा सुनाने लगे।

'अल्पारम्भा क्षेमकरा' उस दिन संध्या हो रही थी, अतः एक श्लोकका मङ्गलाचरण करके ही कथा समाप्त हो गयी; किंतु दूसरे दिन सबेरे ही पण्डितजी वहाँ आ

पहुँचे पोथी लेकर। तभीसे अबतक वे उसी क्रमसे कथा सुनाते आ रहे हैं उन उमाकान्त आशुतोषको।

× × ×

'आज घरमें केवल इस समयके लिए भोजन-सामग्री है।' बेचारी ब्राह्मणी क्या करे, उसे कभी-कभी पण्डितजीको, जब वे अपनी पोथी लेकर मन्दिर जानेको उद्यत होते हैं, यह सूचना देनी ही पड़ती है।

'अच्छा, आज बाबासे कहूँगा।' पण्डितजीका एक बँधा उत्तर है।

उस दिन कथा समाप्त होनेपर पण्डितजी जब पोथी समेट लेंगे तो भगवान् शंकरको प्रणाम करके कहेंगे—'बाबा! ब्राह्मणको कथा सुनाते इधर कुछ दिन हो गये। अब घरमें कुछ भोजन नहीं रहा।'

पण्डितजी इतनी प्रार्थना करके निश्चिन्त हो जाते हैं सदा। उन्होंने घर आकर पत्नीसे कभी नहीं पूछा कि सायंकालकी क्या व्यवस्था है अथवा कलका प्रबन्ध कैसे होगा? ब्राह्मणी कैसे घरकी व्यवस्था करती है, क्या पदार्थ कहाँसे आता है, इसका उन्हें कुछ पता नहीं। इन बातोंको जाननेकी इच्छा उन्हें कभी नहीं हुई और उनकी साध्वी स्त्रीने पतिको यह सब सुनाकर प्रपञ्चमें ले आना कभी उचित भी नहीं माना।

पण्डितजी अपने त्याग एवं भजन-निष्ठाके कारण पूरी बस्ती ही नहीं, दूर-दूर तकके लोगोंके श्रद्धाभाजन थे।

अतएव लोग उनके यहाँ अपने उपहार पहुँचाते ही रहते थे। लोग समझते थे कि पण्डितजीके सामने कुछ ले जानेपर सम्भव है, वे स्वीकार न करें, अतः उनकी अनुपस्थितिमें उनकी पत्नीको ही वे अपनी भेंटें चुपचाप दे जाया करते थे।

घरका काम इस प्रकार चल रहा था। एक दिन ब्राह्मणीने रात्रिको पण्डितजीसे नवीन ही प्रार्थना की—'कन्या बड़ी हो रही है! उसके विवाहकी चिन्ता तो आपको ही करनी पड़ेगी। कहीं लड़का देख आइये और विवाहमें व्यय भी तो होगा।'

'कल बाबासे कहूँगा।' पण्डितजीने अपना निश्चित उत्तर दिया। ऐसे एक नहीं, अनेक श्रद्धालु थे जो पण्डित-जीकी कन्याका विवाह अपने व्ययसे करा देनेमें अपना सौभाग्य मानते; किंतु पण्डितजी जब यह होने दें। यह दान तो ऐसा नहीं था कि उनकी ब्राह्मणीके चुपचाप ले लेनेसे काम चल जाय।

'बाबा! कन्या बड़ी हो रही है। उसका विवाह करना है। मैं वर ढूँढूँ या कथा सुनाऊँ?' दूसरे दिन पण्डितजीने अपने उस औढरदानी यजमानके सामने प्रार्थना की।

'पण्डितजी! मैं आपसे याचना करने आया हूँ।' मध्याह्नमें पण्डितजी घर लौटे तो उनके यहाँ एक सम्मानित वृद्ध ब्राह्मण अतिथिके रूपमें मिले। वे आस-पासमें सबसे सम्पन्न एवं प्रतिष्ठित ब्राह्मण कह रहे थे—

'यह मेरा पुत्र है। इसे साथ लाया हूँ। आप यदि इसमें कोई दोष न देखते हों तो मुझे आपकी पुत्री चाहिये पुत्र-वधू बनानेके लिए।'

विवाह हुआ और खूब धूम-धामसे हुआ। नगरके लोगोंने तनसे सेवा की और धनसे सेवा करनेमें भी कोई कृपणता नहीं की; किंतु किसीकी समझमें नहीं आया कि वह व्यय कैसे पूरा होता गया जो स्वयं पण्डित रामप्रकाशजी करते गये। वे तो इस प्रकार लुटा रहे थे जैसे कुबेरका कोष उनकी झोंपड़ीमें ही रहता हो।

तामस त्याग

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥
(गीता १८।७)

लंबा, दुबला, तनिक साँवला शरीर, गोल मुख, कुछ भीतर गड्ढेमें धँसे मटमैले छोटे नेत्र। वे खादी पहिनते हैं; किंतु वह दूध-सी उजली कभी नहीं रहती। अपने हाथ साबुन लगानेसे जितनी सफेद हो जाय और साबुन भी चौथे-पाँचवें ही तो मिल पाता है। अवस्था कितनी है, मुझे पता नहीं; किंतु सिर, दाढ़ी और मूँछोंके अधिकांश केश श्वेत हो चुके हैं। विद्वान् हैं—हिंदी, संस्कृत और अंग्रेजी तीन भाषाएँ जानते हैं। मैंने कभी नहीं पूछा कि कोई चौथी भाषा भी जानते हैं या नहीं। केवल खादी ही नहीं पहिनते, स्वाधीनता-संग्राममें भाग लेकर कारागारकी चहारदीवारीके भीतर भी रह आये हैं।

उनपर रोष आना कठिन है। उन्हें देखकर दया आती है; किंतु उनसे दूर-दूर रहना ही अच्छा है। पता नहीं किस बातपर वे रुष्ट हो जायँ। जहाँ जायँगे—'यहाँ यह होना चाहिए। तुम लोग यह क्यों नहीं करते? यह असावधानी, यह बेईमानी…' पता नहीं दर्जनों दोष

उन्हें एकदम एक साथ दीख कैसे जाते हैं। दोष कहाँ नहीं होते, किसमें नहीं होते ? हमारी असावधानी, अपूर्णता और परिस्थिति-जन्य विवशता--किंतु वे कुछ सुनना नहीं चाहते।

'मैं यह सब क्षमा नहीं कर सकता। समाचारपत्रोंमें लिखूँगा। अधिकारियोंको सूचित करूँगा। किसीने न सुना तो मेरे व्याख्यान जनताको बौखला देंगे। तुम-लोगोंको मैं निकलवाकर छोड़ूँगा।' भय और चिन्ताकी कोई बात नहीं, वे इनमें-से कुछ करनेवाले नहीं। वे यह कुछ कर नहीं सकते, यह मैं नहीं कह रहा हूँ। करनेकी योग्यता और शक्ति उनमें है; किंतु तत्परता नहीं है। आप निश्चिन्त रह सकते हैं। किंतु बोलना उनका स्वभाव है, उसे रोका नहीं जा सकता।

जहाँ रहेंगे—रहनेकी बात तो दूर, जहाँ घंटे-दो-घंटेको पहुँच जायँगे, सबको क्षुब्ध कर देंगे। कोई व्यक्ति हल्ला मचाकर किसीकी त्रुटियोंका वर्णन आसपास प्रारम्भ कर दे, एक बार वातावरणको प्रतिकूल तो बना ही देता है। आप अपनी ऐसी आलोचना पसंद करेंगे ?

'यहाँ यह होना चाहिये। यहाँ ऐसा प्रबन्ध होना चाहिये! यह बात एकदम नहीं होनी चाहिये। यह काम यहाँ न होकर वहाँ होना चाहिये। यह आदमी इस कार्यसे अविलम्ब हटा दिया जाना चाहिये।' आप पूछेंगे, इसकी अपेक्षा उन्हें नहीं। अपने सुझाव देंगे ही और इतने उच्च स्वरमें देंगे कि आपके साथ दस आदमी और सुन लेंगे। उनके सुझावोंको चरितार्थ करनेकी क्षमता तो कदाचित्

ही किसीमें निकले।

बड़े त्यागी हैं वे। कोई संग्रह नहीं उनके पास। शरीर-पर पूरे वस्त्रतक नहीं। एकाध पुस्तक कदाचित् कभी रख लेते हैं, कितने दिन रहेगी। पैसा है नहीं। मिल जाय तो रह नहीं पाता। अमुक वस्तु प्राप्त ही हो जाय, ऐसा भी कोई आग्रह नहीं दीखा उनमें। किसीपर लगातार कई दिन रुष्ट रहते हों सो भी नहीं। उनका क्रोध क्षणोंका भले न होता हो, बद्धमूल भी नहीं होता।

निद्रा उन्हें आती नहीं। क्यों नहीं आती, कह पाना मेरे लिए कठिन है। यद्यपि मैं साधारण चिकित्सक हूँ—मैंने चेष्टा की और एकाध दिन निद्रा उन्हें आ भी गयी; किंतु वे तो इस तमोगुणको स्वीकार ही नहीं करना चाहते। निद्राको समयका दुरुपयोग मानते हैं।

कोई साधुवेश उन्होंने स्वीकार नहीं किया है। गृहस्थ उन्हें आप कह नहीं सकते; क्योंकि गृहका त्याग कर दिया है उन्होंने। पत्नीकी मृत्युके पश्चात् घर उन्हें रहनेके उपयुक्त नहीं जान पड़ा। अब दस-पाँच दिन या महीने-दो-महीने एक स्थानमें, फिर दूसरे स्थानोंमें—घूमते ही अवस्था व्यतीत हो रही है। अच्छा ही है यह उनके लिए। वे कहीं जमकर रहने लगें, उस स्थानके दूसरे लोगोंको निश्चय बाध्य कर देंगे कि वे घर-द्वार छोड़कर भाग खड़े हों।

सुना है, पढ़ा भी है कि त्यागसे शान्ति प्राप्त होती है। राग अशान्तिका हेतु है, यह निर्विवाद तथ्य है। जब हेतु नहीं रहा, अशान्ति क्यों रहनी चाहिये? किंतु सच

मानिये, इतना अशान्त मनुष्य मैंने नहीं देखा। स्वयं रात-दिन अशान्त और जहाँ रहे, दूसरे आस-पासके लोगोंकी शान्तिको फटकारकर दूर भगा देनेवाला।

निरन्तर व्यग्र, निरन्तर दुखी व्यक्ति आपने नहीं देखा होगा। उनके मुखपर भी कभी-कभी प्रसन्नता दीखती है; किंतु बहुत कम। उनके क्रोधसे भी भयंकर है उनका रुदन। वे किस बातपर क्रोध करेंगे और किसपर फूट-फूटकर रोते हुए अपने भाग्यको, अपनी असमर्थताको कोसने लगेंगे, कहना कठिन है। मुझे उनपर दया आती है; किंतु मैं उनसे दूर-दूर रहना ही पसंद करता हूँ।

× × ×

'आपने घर छोड़ा तो कोई आपपर आश्रित नहीं था?' एक दिन मैंने उनसे पूछा। प्रायः आ बैठते हैं और इनकी-उनकी इतनी त्रुटियाँ, इतने अपराध-विवरण उनके समीप सदा रहते हैं कि आप रात्रि-जागरण पसन्द कर लें तो भी उनकी सामग्री समाप्त नहीं होगी। मैं अल्पप्राण मनुष्य हूँ। बहुत थोड़ा धैर्य, बहुत कम सुनते रहनेकी शक्ति मुझमें है। उन्हें रोकने-टोकनेका अर्थ है उनके रोष या रुदनको आमन्त्रण देना। इसलिए मैं अपनी ओरसे कोई चर्चा चलानेका प्रयत्न करता हूँ और यदि इसमें असफल हो गया, नेत्र बन्द करके बिना निद्राके सो जानेका अभिनय एकमात्र मेरा सहारा है।

'छोटे दो बच्चे थे।' उन्होंने इतनी तटस्थतासे उत्तर दिया, मानो वे बच्चे उनके नहीं, किसी मनुष्यके भी नहीं, बकरी या मुर्गीके उपेक्षणीय शिशु थे।

'उनका पालन-शिक्षण........।'

'आप इन व्यर्थकी बातोंकी चिन्ता क्यों करते हैं।' मुझे बीचमें ही उन्होंने रोक दिया—'सब अपना-अपना प्रारब्ध लेकर आते हैं। अपने भाग्यका भोग उन्हें भोगना चाहिये। उनके लिए गृहमें बँधे रहनेको तो मनुष्यका जन्म नहीं मिला है।'

मनुष्यका जन्म किसलिए मिला है।' यह प्रश्न करनेका साहस मुझमें नहीं था। जानता था कि इसके उत्तरमें वे जो प्रवचन प्रारम्भ करेंगे, वह कई घण्टे अविराम चलता रहेगा। वे ऐसे वक्ता नहीं जो बोलते-बोलते थक जाते है। सामान्य वक्तृत्वकी बात तो दूर, किसीको कोसनेमें भी उन्हें बीचमें पानी नहीं पीना पड़ता।

'मनुष्य-जन्म किस प्रकार सफल कर रहे हैं।' मुझ पागल कुत्तेने नहीं काटा था कि मैं उनसे इस प्रकार पूछकर उनके क्रोधका पात्र बनता। क्रोध यदि उस समय उनको न आता—कोई सौभाग्यकी बात नहीं होती। तब वे फूट-फूटकर क्रन्दन करने लगते और उनका रुदन मुझे उनके क्रोधसे अधिक कष्टदायी लगता है।

'आप नियमित संध्या करते हैं?' जब भी वे मेरे पास आ बैठते हैं, उनकी अविराम वाग्धाराको अटकानेके लिए मुझे अपने मस्तिष्कपर दबाव डालना पड़ता है किंतु यह बात आपसे कह दी, उनसे मत कहिये। वे निजी प्रश्नोंसे कतराते हैं। जिन प्रश्नोंके उत्तरमें उनके पिछले जीवनका विवरण हो, उनके कर्तव्याकर्तव्यकी

पूछताछ हो, उन प्रश्नोंका उत्तर वे दो शब्दोंमें देना चाहते हैं। जब देखते हैं कि आज उनसे ऐसे ही प्रश्न पूछे जायँगे, उन्हें कोई अत्यावश्यक कार्य स्मरण आ जाता है। आप समझ गये होंगे कि मैं उनसे प्रायः कैसी बातें पूछता होऊँगा।

'मैं इन कर्मकाण्डोंको महत्त्व नहीं देता।' उनके स्वरमें ऊबनेका भाव स्पष्ट था। वे ब्राह्मण हैं, पर बड़ी सी चुटिया रखते नहीं; शिखाशून्य भी आप उन्हें नहीं कह सकते। सिरके केश छोटे रखते हैं, अतः शिखाके स्थानपर जो दस-पाँच कुछ बड़े बाल हैं, वे उन्हें हिन्दू बताते हैं। वैसे जनेऊ खादीके सूतका खूब मोटा पहनते हैं वे।

'मैंने एक आदमीको अभी मिलनेका वचन दिया है।' वे उठ खड़े हुए। मुझे तो इसकी आशा ही थी। मैं उनसे निजी प्रश्न न करूँ, उनको कभी अपना किसीको दिया वचन स्मरण नहीं आ सकता।

× × ×

'तुम दूसरोंके दोष देखनेमें जितना समय देते हो, उतना यदि भजन करनेमें लगाओ।' उस दिन मैं एक वीतराग महात्माके पास गया था। देखा, वे वहाँ बैठे लोगोंमें सबसे आगे बैठे हैं। महात्मा उनको समझा रहे हैं—'तुम्हें भी शान्ति मिले और दूसरोंको भी तुमसे उद्वेग न हो।'

'मैं दूसरोंके दोष देखता हूँ और आप सबके गुण-ही-गुण देखते हैं। मुझमें कोई गुण नहीं दीखता आपको।' वे बिगड़ उठे। 'लोग मनमानी करते रहें, पर किसीको बोलना नहीं चाहिये। जनताके पैसे और सार्वजनिक स्थानोंका दुरुपयोग लोग कर रहे हैं, मैं उसे चलने नहीं दे सकता। जनता-जनार्दनकी सेवा भगवान्का भजन नहीं है, यह कहनेवाला शास्त्रोंका तात्पर्य तनिक भी नहीं समझता।'

वे खड़े हो गए आवेशके मारे और बोलते रहे। वहाँ बैठे लोगोंमें-से एक समझदार सज्जन उठे। बड़ी नम्रता-पूर्वक वे उन्हें साथ लेकर चले गये एक ओर। सबका समय नष्ट न हो, सबके सत्संगमें बाधा न पड़े, इसलिए उन्होंने अपने सत्संगका समय उनको पृथक् ले जानेमें लगाया।

'त्यागसे शान्ति मिलनी चाहिए।' मुझे जब अवसर मिला, मैंने महात्माजीसे पूछा। 'इनमें न संग्रहकी प्रवृत्ति है, न वस्तुओंका मोह दीखता है। किन्तु इतना अशान्त पुरुष·· ·········।'

'नारायण, त्याग सात्त्विक हो तो उससे निश्चय शान्ति प्राप्त होती है।' महात्माने मुझे बताया। 'परंतु राजस त्याग शान्ति नहीं देता। वह तो निष्फल ही जाता है। त्याग राजस न होकर यदि तामस हो जाय तो अशान्तिका उद्भव बन जाता है।'

'त्यागसे अशान्ति उत्पन्न होती है?' मैंने आश्चर्यके

साथ पूछा। आपको भी यह बात सरलतासे गले उतरती नहीं जान पड़ेगी।

'नारायण, यदि तुम स्नानका त्याग कर दो अथवा अपने वस्त्रोंको स्वच्छ करनेका प्रयत्न त्याग दो, महात्माने स्नेहभरे स्वरमें समझाया—'क्या होगा, जानते हो?'

'वस्त्र मैले हो जायँगे, देह मैलसे ढक जायगा।' मुझे स्वीकार करना पड़ा। 'दुर्गन्धि आयेगी और रोग आ सकता है।'

'इस त्यागने तुमको और तुम्हारे समीपस्थोंको क्या दिया—शान्ति या अशान्ति?' महात्माका प्रश्न सीधा था। उत्तर बिना दिये ही दे दिया गया मुझे।

'नियत कर्तव्यका त्याग किसी अवस्थामें उचित नहीं है। अज्ञान या कुतर्कवश कोई इसका त्याग कर ही दे' साधु कह रहे थे—'इस तामस त्यागसे उसके मनका मल बढ़ता जायगा। कर्तव्यका पालन तो चित्तकी नित्य स्वच्छताका हेतु है। वह स्वच्छता अवरुद्ध हुई, मल एकत्र होने लगा। जहाँ मल होगा, वहाँ दुर्गन्धि और रोग होंगे। स्वयं तथा दूसरोंको भी अशान्ति तथा कष्टके अतिरिक्त और क्या मिलेंगे, ऐसी स्थितिमें।

वे त्यागी हैं—बेचारे········किंतु उन्हें समझानेका साहस मुझमें नहीं है। आपमें-से यदि कोई साहस कर सकते हों······।

राजस त्याग

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ।।

गीता १८ . ८

'बम् शंकर, काँटा गड़े न कंकर !' दोनों हाथोंमें एक विशेष मुद्रापूर्वक चिलम पकड़कर मुखसे लगा ली गयी । पूरी शक्तिसे खींचनेका फल हुग्रा कि चिलमके ऊपर छः अंगुल ऊँची लौ उठी । मुख ग्रौर नाकसे धुग्राँ उड़ाते उन्होंने चिलम दूसरेकी ग्रोर बढ़ा दी ।

पाँच जटाधारी बैठे थे । प्रायः सभी कृशकाय , लाल-लाल नेत्रवाले । कम्बल लपेटकर लंगोटीसे बाँध लिया गया था ग्रौर इस समय कंधेमें लटकानेके बदले उसे उन्होंने ग्रपने पास भूमिपर रख लिया था । तीनके पास बड़े-बड़े चमकीले लोटे थे ग्रौर दोने खूब बड़े तुम्बे समीप रख छोड़े थे । चिमटे थे , कुल्हाड़ी थी ग्रौर एकके पास परशु भी था ।

सभी भस्मधारी थे । यों इस समय शरीरपरसे भस्म छूट चुकी थी ग्रौर ग्रब उसका चिह्न ही लक्षित हो सकता था । मस्तकपर , भुजाग्रोंपर , वक्षपर , उदरपर भी रामानन्दी तिलक लगा था । कौपीन ग्रौर ग्रचला—

भस्मधारीके वस्त्र उज्ज्वल होनेकी आशा की नहीं जानी चाहिये।

बड़ी-बड़ी पूरे गट्ठर-जैसी जटा थीं दोके सिरपर और सभीके गलेमें तुलसीकी माला थी। किंतु एकके गलेकी माला दर्शनीय थी। इतने बड़े-बड़े, लम्बे तुलसीके दाने जिनमें छोटी सींगों-जैसी शाखाएँ भी रक्खी गयी थीं; साधुओंके समाजमें भी कम ही देखनेमें आया करते हैं। एक साधुके गलेमें चौकोर ताबीजों-जैसे तुलसीके दानोंकी माला थी। उन दानोंपर 'सीताराम' गोदा गया था,

मैं गङ्गास्नान करने गया था। घाटके ऊपर ही मार्गसे तनिक हटकर एक बरगदका वृक्ष है। कभी उस वृक्षके नीचे एक फूसकी झोपड़ी थी। उसमें एक साधु रहा करते थे। एकान्तसेवी, भजनानन्दी साधु थे वे। उन्होंने बरगदके नीचे कच्चा चबूतरा बना रक्खा था। समीप ही कुछ फूल-तुलसीके पौधे लगा रक्खे थे। कभी-कभी मैं उनके समीप थोड़ी देरको जा बैठता था। गङ्गाकी बाढ़ आयी और झोंपड़ीको जल छूने लगा तो वे कहीं आसन बाँधकर चले गये। अब वहाँ महीनोंसे झोंपड़ी नहीं है। दो-चार तुलसी और दो कुन्दके पौधे अभी हरे हैं। आज स्नान करके घाटपर ऊपर आया तो वृक्षके नीचे साधुओंको देखकर दृष्टि उधर उठ गयी। देखने लगा कि कहीं वे भी तो इस समूहमें नहीं हैं?

'भगत! इधर आ।' एक साधुने पुकारा। मैं अपने मार्गसे जानेको मुड़ चुका था। दम लगानेवालोंमें भी अच्छे

संत हो सकते हैं, किंतु मेरे मनमें अरुचि है इस वर्गके प्रति। जिसने सत्याग्रह-आन्दोलनमें गाँजे-भाँगकी दूकानपर महीनों धरना दिया हो और इस वर्गकी गालियाँ खायी हों, वहाँसे जेल गया हो, उसके मनमें यदि दम लगाने-वालेके प्रति अरुचि स्थिर बैठ गयी हो तो आपको यह दुर्बलता क्षमा कर देनी चाहिये।

'क्या बात है ?' मैं कुछ दूर ही जाकर खड़ा रहा उन लोगोंसे। केवल हाथ जोड़कर सामान्य नमस्कार किया गया। मुझे उस साधुका पुकारना बुरा ही लगा था।

'आ बैठ तो !' उसी साधुने कहा। 'सन्तोंके समीप बैठनेसे कल्याण ही होता है।'

'आपकी कृपाके लिए धन्यवाद !' रूखे स्वरमें मैंने कहा। 'मेरे पास अवकाश नहीं है और मैं किसी प्रकारकी कोई सेवा आप लोगोंकी कर नहीं सकूँगा।'

'सुनिये तो !' मैं मुड़ा ही था कि एक दूसरा स्वर सुनायी पड़ा। कुछ पहचाना लगा यह स्वर और उसमें जो शिष्टता थी, वह मुझे अच्छी लगी। मैं समीप चला गया उन लोगोंके। वैसे मुझे तम्बाकूके धुएँसे कष्ट होता है, जी घुटता-सा लगता है। इसलिए भी मैं उन लोगोंके समीप नहीं जाना चाहता था।

'आपने मुझे पहिचाना नहीं लगता।' एक साधु उनमें-से उठ खड़े हुए। अबतक मैंने उनके मुखकी ओर ध्यानसे देखा नहीं था। किंतु देखकर भी मैं उन्हें पहिचान नहीं सका। उन्होंने मेरी स्मृतिको सहायता दी—'अवध-राम तिवारीको आप भूल ही गये।'

'अवधरामजी !' मैं चौंका, किंतु न पहिचाननेका कारण तो था ही—'क्षमा करें, यह भारी जटा और यह लम्बी घनी दाढ़ी मेरे अनुमानमें भी नहीं थी।'

'अब दासको लोग अवधदास कहते हैं।' उन्होंने देख लिया कि मैं अब भी वहाँ बैठनेको उद्यत नहीं हूँ। 'आपसे मिलनेकी इच्छा बहुत दिनोंसे थी; किंतु इस समय तो आप शीघ्रतामें जान पड़ते हैं।'

'मुझे अभी अपना नित्यका स्नानोत्तर कर्म सम्पन्न करना है।' मैंने भी संकोच नहीं किया। 'आप यदि मध्याह्नके बाद पधारें घरपर; किंतु अकेले आइये।'

'हम सब मन्दिरपर आसन रक्खेंगे।' उन्होंने स्वीकार कर लिया। 'मैं अकेले ही आऊँगा।'

मैं प्रणाम करके लौटा तो अवधदासजीसे उनके साथी मेरा परिचय पूछ रहे थे।

× × ×

श्रीअवधरामजी मेरे परिचित लोगोंमें हैं। ऐसे युवकोंमें जो कुछ समय मेरे साथ रहे हैं। सबसे पहिले मैंने उन्हें अपने शिविरमें पाया सत्याग्रह-आन्दोलनके दिनोंमें। वे स्वयं ही आये थे स्वयंसेवकोंमें भर्ती होने। किंतु वहाँ वे टिक नहीं सके। उन्हें और तो कोई कठिनाई नहीं हुई थी; किंतु भोजन बनाने, बर्तन मलने, स्थानकी स्वच्छतामें वे योग नहीं दे पाते थे। जहाँ सब एक स्तरके, एक बराबरके हों, वहाँ एकको श्रमके कार्योंसे छुट्टी कैसे दी जा सकती थी? उनकी दूसरे लोगोंसे पटी नहीं। वे चले गये एक दिन बिना किसीको सूचना दिये।

अच्छा खाता-पीता कृषकका घर ; किंतु घरपर भी अवधरामकी किसीसे पटती नहीं। वे दिनभर पड़े-पड़े रामायण, सुखसागर अथवा उपन्यास पढ़ा करें, यह उनके परिश्रमी भाइयोंसे नहीं देखा जाता। पाठशालाको उन्होंने पहिले ही नमस्कार कर लिया है। अब किसानके घरका लड़का खेत-खलिहान नहीं देखेगा तो उसे भाई-भाभियोंकी खरी-खोटी सुननी तो पड़ेगी ही।

कांग्रेस-आन्दोलनमें अवधरामजीका सम्मिलित होना उनके भाइयोंको अच्छा नहीं लगा था। केवल इसलिए अच्छा नहीं लगा था कि वे अपने घरके समीपके ही शिविरमें थे। यहाँसे पकड़े जानेपर पुलिसको उनका नाम-पता ढूँढ़ना नहीं पड़ता। घरके लोग यह कैसे पसन्द कर सकते थे कि अवधरामपर हुए अर्थदण्डको प्राप्त करनेके लिए घरके गाय-बैल नीलाम करे। हो यही रहा था उन दिनों कि जिसका भी पता लग जाता, उसपर न्यायालय कसके अर्थदण्ड करता और पुलिस उसके घर जो कुछ मिल जाता, वही उठा ले जाती। स्वयं मेरे घरके किवाड़ अर्थदण्ड प्राप्त करनेके लिए पुलिसके लोग द्वारमेंसे निकाल ले गये थे।

हमारे शिविरसे सूर्योदयसे पहिले ही उस दिन अवधराम चले गये थे। पीछे पता लगा कि वे घर गये हैं। उन दिनों सत्याग्रह-आन्दोलन पूरे वेगमें था और अंग्रज सरकारका दमन भी अपनी सीमापर था। मुझे समय कहाँ था कि किसीके समाचार रखता।

मैं कारागारमें छः महीने रहकर बाहर आया। थोड़े

ही दिनोंमें सामूहिक सत्याग्रह-आन्दोलन महात्माजीने स्थगित कर दिया। व्यक्तिगत सत्याग्रह अन्ततः व्यक्तिगत ही तो रहता। उसमें वैसी व्यापकता नहीं थी।

स्थिति शान्त हुई तो किसी विशेष चर्चाके मध्य पता लगा कि अवधराम घरसे चले गये हैं। वे सचमुच अवध-आराम बन गये हैं। अयोध्या जाकर उन्होंने किसी बाबाजीसे दीक्षा ले ली है। समयके पग तो रुकते नहीं। बात आयी-गयी हो गयी। कई वर्ष व्यतीत हो गये। सम्भवतः अब भाइयोंको भी स्मरण नहीं होगा कि उनके अनुजका क्या हाल है।

इतने दिनोंके बाद आज अकस्मात् अवधरामजी इस वेशमें मिलेंगे, यह कल्पना भी मनमें कैसे आती। मैं घर लौट आया; किंतु मनमें कई बातें उठती रहीं। इतने दुबले हो गये अवधराम—भूल रहा हूँ, अब मुझे अवधदास कहना चाहिये। ब्राह्मणके बालक इधर चिलम छूना भी पसंद नहीं करते और यह गाँजेकी दम! संगका प्रभाव क्या नहीं कर सकता।

सब बात तो ठीक; किंतु मनुष्यके केश इन कुछ वर्षोंमें इतने बढ़ जाते हैं कि उनसे बनी जटा खुली होनेपर डेढ़-दो हाथ पृथ्वीमें खड़े होनेपर घसीटती चले और बाँधनेपर मस्तकपर बड़ा-सा गट्ठर बन जाय, यह बात समझमें नहीं आती थी।

× × ×

'आइये!' मैं भोजन करके लेटता हूँ। लेटे-लेटे ही कुछ पढ़ता हूँ। आज भी यही क्रम चल रहा था। अवध-

दासजीको आते देखकर मैं उठ खड़ा हुआ । 'आप चारपाईपर तो बैठेंगे नहीं ।'

'आप लेटिये ! मैं कुर्सीपर बैठता हूँ।' वे कुर्सी समीप खींचकर बैठ गये तो मैं भी चारपाईपर बैठ गया ।

'आपके साथी सम्भवतः मन्दिरमें ही होंगे ?' मैंने शिष्टाचारवश ही पूछा।

'अभी तो मन्दिरमें ही हैं, पर शामको आगे चले जायँगे !' मुझे उन्होंने बताया। 'मैं काशीसे चला तो दो संत साथ हो गये। मार्गमें दो और मिल गये। अब वे लोग श्रीजगन्नाथजी जायँगे ।'

'आप लोग पैदल ही यात्रा करते हैं ?'

'नहीं तो !' वे निःसंकोच बोले । 'रेल तो रामजीकी है ; किंतु काशीमें हमलोगोंको एक टी-टीने उतार दिया था । इधर दम लगानेका सामान भी समाप्त हो रहा था, सबने सोचा कि कुछ दूरतक गाँवोंमें घूमते चले जायँ ।'

'अयोध्या आपने क्यों छोड़ा ?'

'चार-छः दिन तो वहाँ ठीक व्यवस्था रही, उसके बाद गुरुजीने भंडारकी सेवा दे दी ।' वे बोले—'मुझे गोबर उठाना होता, चारा काटना होता तो घर ही न रहता । साधु हुआ था भजन करनेको कि खाद ढोने, हंडे-कड़ाहे मलने और झाड़ू लगानेको। मैंने फिर भस्म धारण कर लिया, इससे भंडारमें चूल्हा फूँकनेसे छुट्टी मिल गयी ; किंतु बर्तन, गोबर और न जाने क्या-क्या बखेड़ा आ गया । इसलिए मैंने स्थान छोड़ दिया । कुछ दिन जमात-

के साथ रहा ; किंतु वहाँ भी यही खटपट, अतः अब अपने रमते राम हैं।'

'चलिये, अब सब बखेड़े छूट गये। अब तो भजन-ही-भजन है।' मैंने सहजभावसे कह दिया।

'भजन ही तो नहीं बनता।' अब वे कुछ खिन्न स्वरमें बोले। 'गप्पें लड़ाना, यहाँ-वहाँ घूमना, बस होता यह है। किसी-न-किसीके साथ हो लेता हूँ, अतः टिक्कर सेंकने नहीं पड़ते। किंतु भजन बननेका कोई मार्ग नहीं दीखता। आपकी स्मृति आयी अनेक बार। सोचा कि आपसे मिलकर सब बातें कहूँगा। दूसरे किसीसे कुछ कहने-पूछनेमें तो यह वेशका संकोच बड़ी बाधा है।'

'मैं एक स्थान जानता हूँ। आप चाहें तो पत्र दे दूँगा।' मैंने सीधे प्रस्ताव किया। 'नियमित रूपसे छः घण्टे प्रतिदिन रामायणका पाठ करना पड़ेगा। रहनेको कुटिया और सादा-रूखा भोजन आपको वहाँ मिल जायगा। जबतक चाहें, वहाँ रहें।'

'छः घण्टे नियमसे बँधकर पाठ करना अपने वशका नहीं।' वे बोले। 'जब सब कुछ त्याग दिया तो पेटके लिए नौकरी कौन करे।'

'सब कुछ त्याग दिया…' उनके चले जानेपर मैं सोचता रहा, इस त्यागका क्या अर्थ। यह त्याग हुआ भी या नहीं और यदि त्याग हो—भजन क्यों नहीं बनना चाहिये। किंतु शरीरको कष्ट मिलेगा, इस भयसे किया गया त्याग राजस त्याग है—निष्फल है वह।

सात्त्विक त्याग

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।
संगं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ॥

गीता १८ : ९

'कुमार ! आखेट एक व्यसन है—दुर्निवार व्यसन !' जब कमरपर त्रोण कसकर, हाथमें धनुष लेकर परिकरोंके साथ राजकुमारने अरण्यकी ओर प्रस्थानसे पूर्व अपने अस्त्रगुरुके चरणोंमें मस्तक झुकाया, वे रजतकेश महाधनुर्धर बोले—'व्यसन सदा त्याज्य है; क्योंकि वह पतनका हेतु होता है। साथ ही कर्तव्यसे पराङ्मुख होना कापुरुषता है।'

'श्रीचरणोंके आदेश मुझे प्रकाश प्रदान करेंगे।' युवक राजकुमारने अनुमति प्राप्त की और दो क्षण बीतते-न-बीतते उनका अश्व अपने सब अनुगतोंको पीछे छोड़ चुका था। आखेट-सहायकदल प्रयत्न कर रहा था कि वह साथ ही रहे और आखेट-निर्देशकने तो अन्तमें राजकुमारको पुकार ही लिया। प्रथम आखेटके समय अनुभवहीन युवकको एकाकी वनमें कैसे जाने दिया जा सकता है ?'

'इधर दो वर्षसे श्रीमान् नहीं पधारे हैं !' अभी कल

एक वन्यजनपदके प्रतिनिधिने आकर नरेशसे प्रार्थना की। 'हमारे खेतोंके लुटेरे वनपशु, सम्भव है, हमें भूखों मरनेके लिए विवश कर दें। इधर हमारे गृह-पशुओंको पशुशालाकी परिखा कूदकर वे उठा ले जाते हैं और पिछले तीन महीनेसे एक शेर मानव-भक्षी हो गया है। उसने अकेले पड़ने वाले घसियारोंको तो मारा ही था, कल ग्रामके पाससे वह एक किशोरको उठा ले गया।'

नरेशने समाचार सुना और उनके नेत्र भर आये। वे वृद्ध हो गये हैं। रोगने उन्हें जर्जर कर दिया है। पूरे वर्षभरसे अश्वकी पीठका स्पर्श नहीं कर सके वे। सेनापति जायँगे; किंतु पुत्रके समान प्रजाकी रक्षाका भार सेनापतिपर छोड़कर क्या निश्चिन्त रहा जा सकता है? आज यदि उनका शरीर थोड़ा भी साथ दे पाता··· ।

'राजकुमार कल आपके जनपदकी ओर प्रस्थान करेंगे?' राज्यके अस्त्र-शिक्षकने जो घोषणा की, उसने महाराजको, राजसभाको ही नहीं, स्वयं राजकुमारको भी चकित कर दिया। 'जबतक वन्यपशुओंका उपद्रव शान्त न हो जाय, उनका आखेट-शिविर आपके जनपदके समीप रहेगा; किंतु वे पूरा ध्यान रक्खेंगे कि उनके शिविरके कारण आप लोगोंको कोई असुविधा न हो।'

'वे हमारे स्वामी'—वन्य प्रतिनिधि उठ खड़ा हुआ। 'उनसे हमें असुविधा क्या होगी। हमारे भाग्य ऐसे नहीं कि हम उनका स्वागत कर सकें। इतनी ही उनकी क्या कम कृपा है कि वे हमारे जनपदकी ओर पधारेंगे!'

'राजकुमार आखेट करने जायँगे?' आशंका नरेशको

थी, ऐसा ही नहीं—प्रत्येकका चित्त सशङ्क था।

'हिंसाका यह घोर कर्म मुझे करना पड़ेगा ?' राजसभासे उठते ही राजकुमार अपने अस्त्रशिक्षकके सम्मुख उपस्थित हुए। बहुत सम्मान करते हैं राजकुमार इन वृद्ध महाधनुर्धरका। किंतु ऐसा आदेश पानेकी आशा उन्हें नहीं थी।

'तुम न जाओ तो मुझे जाना होगा और मैं समझ लूँगा कि जीवनमें प्रथम बार एक अनधिकारीको शिक्षा देनेकी भूल मैंने की।' अस्त्रशिक्षकने राजकुमारके मुखपर नेत्र स्थिर कर दिये। 'जो आपत्तिग्रस्त जनोंको अभय देने आगे न बढ़ सके, धिक्कार है उसके क्षत्रिय होनेको। अस्त्र-शिक्षाका और उपयोग भी क्या होगा। कर्म अपने आपमें कहाँ शुभ या अशुभ है। यों तो तुम श्वास लेते हो, तब भी सहस्रों जीव मरते हैं।'

'मैं अवज्ञा करनेकी धृष्टता नहीं कर सकता।' राजकुमारने मस्तक झुका दिया। 'आखेटके औचित्यकी बात—हिंसा मुझे ही नहीं, श्रीचरणोंको भी अत्यन्त अप्रिय है !'

'वत्स ! तुम जानते ही हो कि इस वृद्धने अहिंसाका व्रत ले लिया है, किंतु तुम प्रस्तुत न हो तो मेरा धनुष अब भी वनमें मृत्यु-वर्षा करनेमें समर्थ है।' स्नेहपूर्ण स्वर—'यह हिंसा हो भी तो उसका फल हम भोग लेंगे। जो अपने जीवन तथा आजीविकाकी रक्षाके लिए तुम्हारी ओर देखते हैं, उन्हें अभय देनेके लिए ही तुम्हारे हाथमें धनुष है। तुम्हारा कर्तव्य तुम्हें वनमें पुकार रहा है।'

'मैं प्रातः प्रस्थान करूँगा।' राजकुमारने सादर आदेश स्वीकार कर लिया। उनके आखेटके लिए शेष बातोंकी व्यवस्था स्वयं महाधनुर्धरने अपने हाथमें ली। प्रातः सूर्योदयके कुछ काल पीछे ही वन्य प्रतिनिधिके साथ राजकुमारका पूरा दल प्रस्थान कर चुका था।

× × ×

'ठहरो!' वज्रकठोर स्वर। आखेट-प्रमुखके कर धनुषकी प्रत्यञ्चापर जैसे स्तम्भित हो गये। बलाबलपूर्वक खींचनेसे अश्व लगभग दो पैरोंपर खड़ा हो गया। पीछे मुड़कर देखनेकी आवश्यकता नहीं हुई। पूरे वेगमें राजकुमारका अश्व आया और ठीक सम्मुख खड़ा हो गया—'एक शिशुवती माताकी हत्या आप नहीं कर सकते।'

'आखेटके कुछ नियम होते हैं कुमार!' आखेट-प्रमुखने अपने अश्वको सँभाला और धनुषसे बाण उतार लिया। 'आप ठीक मेरे धनुषके सम्मुख आ खड़े हुए हैं और मनुष्य सदा सावधान नहीं रहता। सिंहनी बिफर नहीं उठेगी—क्या आश्वासन!'

'मानवताके नियम आखेटके नियमोंसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।' राजकुमारके स्वरमें अब भी आवेश था। वे देख रहे थे कि आखेटप्रमुखके नेत्र दूर लक्ष्यपर थे और उनके दक्षिण करका बाण अभी त्रोणमें नहीं गया था। 'मेरे प्राणोंकी अपेक्षा उस माताके जीवनका अधिक मूल्य है; जिसके ऊपर उसके तीन शिशु निर्भर करते हैं।'

'हमने एक नर सिंह मार दिया है। वह मानवभक्षी था।' आखेट-प्रमुखने अपने अनुभवका परिचय दिया। 'यदि वह इसी परिवारका हो, ये शिशु भी मानव-मांसका स्वाद पा चुके होंगे और कुछ महीनोंमें ही भयप्रद हो जायँगे।'

'अपने अपूर्ण अनुमानके आधारपर हम हत्या करने तो आये नहीं हैं।' राजकुमारने अब आगे देखा। सिंहनी इतनी देरमें अपने शावकोंको लेकर गुफामें जा चुकी थी। 'हम यहाँ निरीक्षक रख दे सकते हैं। यदि यह परिवार मानव-भक्षी भी हो गया हो तब भी शिशुओंको और उनकी माताको मारा नहीं जा सकता। हम उन्हें अपनी जन्तु-शालामें ले जायँगे।'

'कुमार ! क्षमा करें।' आखेट-प्रमुखका स्वर गद्‌गद हो उठा। 'जीवनमें आज एक सच्चे आखेटकके दर्शन हुए मुझे। आखेट-शास्त्रमें पढ़ा मैंने भी यह सब है; किंतु वनमें इन सब बातोंका पालन भी किया जाता है, आज यह जीवित शिक्षा प्राप्त हुई। मैं आखेटका प्रमुख निर्देशक भले होऊँ, उसके आदर्शकी प्रेरणा मुझे आपसे लेनी चाहिये, यह समझ गया।'

'शूर हत्यारे नहीं हुआ करते !' राजकुमारने किंचित् संकोचका अनुभव किया। 'मुझे तो आपसे शिक्षा लेनी है। पिताने भी आपके संरक्षणमें मुझे भेजा है। मैं चाहता यही हूँ कि एक भी निरपराध पशु न मारा जाय। जहाँ-तक सम्भव हो, वन्य पशुओंको भयभीत करके हम जनपदसे दूर घने वनोंमें चले जानेको विवश कर दें।

ऐसी व्यवस्था यहाँ कर जायँ कि वे शीघ्र इधर लौट न आवें।'

'अबतक मैंने यही सीखा था कि आखेटका सम्मान अधिक-से-अधिक पशुचर्म प्राप्त करने—विशेषत: दीर्घाकार व्याघ्र एवं सिंहोंके चर्म प्राप्त करनेमें है। दोनों ही आखेटक अपने अश्वोंको मोड़ चुके थे। आखेट-प्रमुख अपनी बात कह रहे थे—'आज दूसरी बात कुमारने हमें दी।'

'सम्पूर्ण जीवन ही एक आखेट-क्रीड़ा है। यह मेरे शस्त्रगुरुने एक बार कहा था।' कुमार गम्भीर हो गये। 'हम हत्याका व्यसन पाल लेंगे आखेटमें, तो जीवनमें भी उत्पीड़न एवं परस्व-हरणके पापसे बच नहीं सकेंगे। कर्तव्य है, इसलिए कर्म करना है। उसमें आसक्ति—आखेटमें आसक्ति व्यसन है, यह चेतावनी शस्त्रगुरुने चलते समय दी है मुझे।'

× × ×

'कुमार! कल तुमने मुझे मारा है।' विशाल-वपु केशरी खड़ा था सम्मुख; किन्तु आज उसके नेत्रोंसे अङ्गार नहीं झड़ते थे और उसका भयानक मुख भी खुला नहीं था। उसकी दिगन्तकम्पी गर्जना तो कल ही सदाको सो चुकी। 'मैं तुम्हें उपालम्भ नहीं देता। मैं आक्रमण-कारी था, तुम मुझे मार न देते तो मैं तुम्हें अवश्य मार देता।'

आखेटसे श्रान्त राजकुमार अपने शिविरमें तृणशय्या-पर सो रहे थे। प्रगाढ़ निद्रा आयी थी उन्हें; किन्तु

इस समय अब वे स्वप्न देख रहे थे। सदाकी भाँति आज रात्रिके चतुर्थ प्रहरमें वे जाग्रत् नहीं हो सके। पता नहीं, कलकी श्रान्तिका परिणाम था यह, अथवा जो स्वप्न वे देख रहे थे, उसे विश्वविधायकको अवकाश देना था।

'दोष मेरा भी नहीं है। मेरे आवासके समीप कोलाहल सुनकर मेरे शिशुओंकी जननी चिन्तित हो उठी थी।' केहरी कहता गया। 'मेरा शौर्य सहधर्मिणीको चिन्तित नहीं देख सकता था। धाताने स्वभावसे ही मेरी जातिको असहिष्णु बनाया है।'

शिविरके बाहर प्रहरी शान्त पदोंसे टहल रहा था। आखेट-प्रमुखने उसे आदेश दिया था कि राजकुमार यदि विलम्बसे भी उठें, तब भी उनको स्वतः उठने दिया जाय। आज उनकी निद्रामें व्याघात नहीं पड़ना चाहिये। कल काननमें वे अत्यधिक श्रान्त हो चुके हैं।

'तुम्हारे बाणोंने मुझे सद्गति दी। मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। अत्यधिक कृतज्ञ इसलिए हूँ कि कल ही तुमने मेरी संतानोंकी रक्षा की। मेरी सिंहनीको तुमने आखेटकका लक्ष्य होनेसे बचाया।' राजकुमार स्वप्नमें भी आश्चर्य कर रहे थे कि इतना क्रूर प्राणी भी कितना कृतज्ञ हुआ करता है। सिंह आगे बोला—'मैं इस वेशमें केवल इसलिए आया हूँ कि तुम मुझे पहिचान सको। नियम-निष्ठ आखेटकके शस्त्रोंसे मृत-पशु पवित्र होकर स्वर्गमें स्थान प्राप्त करता है।'

'तुमने मुझे सद्गति दी और मेरे शिशुओंको बचाया। मैं इस समय समर्थ हूँ। मेरा प्रसाद व्यर्थ नहीं जाना

चाहिये ।' स्वप्नमें राजकुमारने देखा कि सिंह सहसा एक ज्योतिर्मय दिव्य-देहधारी मनुष्याकृतिमें परिवर्तित हो गया है। वह रत्नाभरणभूषित निश्चय कोई देवता है। अब वह देवता कह रहा था —' प्रातः निद्रात्यागके पश्चात् सोच लेना कि तुम्हें जीवनमें क्या चाहिये। अपनी नियमित अर्चाके उपरान्त आधे मुहूर्ततक तुम जो भी कामनाएँ करोगे, वे सब पूर्ण होंगी ।'

' मैंने कोई सत्कार्य तो किया नहीं ।' निद्रासे उठते ही राजकुमारके मनमें पहिली बात आयी। 'केहरी निरपराध था। उसके आवासके समीप हमलोग गये न होते, वह आक्रमण करने हमारे शिविरपर तो आ नहीं रहा था। मेरा अपराध उसके मनमें नहीं आता—देवताका यह सहज औदार्य; किन्तु मैंने आगे जो किया, वह मेरा कर्तव्य-मात्र था ।'

राजकुमार देरसे उठे थे आज। नित्यकर्मोंसे निवृत्त होनेमें उन्हें देर होनी ही थी। आखेट-प्रमुखको कोई शीघ्रता नहीं थी। आज तो यहाँसे राजधानी प्रस्थान करना था। यहाँका कार्य तो समाप्त हो चुका। प्रस्थान कुछ देरसे भी हो तो वनमार्गकी छाया आतपका कष्ट नहीं होने देगी।

' पशु और मानव सब अपनी मर्यादामें रहें। सबका मङ्गल हो !' आप इसे कामना कह सकते हों तो अर्चा समाप्त करके यह कामना राजकुमारने अवश्य की थी। इसके पश्चात् वे पुनः ध्यान करनेमें लग गये थे। पूरा मुहूर्तभर अधिक लगाया उन्होंने उस दिन ध्यानमें।

'हम सब किसी सेवाके योग्य नहीं।' प्रस्थानको प्रस्तुत राजकुमारके सम्मुख वन्य जनपदके कुछ लोग उपस्थित हुए थे। वे अद्भुत औषधियाँ, दुर्लभ वीरुध तथा अन्य उपहार ले आये थे—'यह घासफूस स्वीकृति पा जाय, हम अपनेको धन्य मानें।'

'आपके स्नेहने हमें धन्य किया।' राजकुमारने उपहार लौटाये नहीं; किन्तु लानेवालोंको पुरस्कार स्वीकार करना पड़ा और वह अल्प नहीं था। 'हम तो यहाँ कर्तव्यका एक अंश पूर्ण कर सके, यही सबसे बड़ा उपहार।'

सुनते हैं, नगर लौटनेपर शस्त्रगुरुने अपने शिष्यको सच्चा त्यागी कहकर हृदयसे लगाया था।



दरिद्र कौन? जिसको सन्तोष न हो

'सचमुच पारस कोई पदार्थ है?' अलबर्ट मॉरीसन रसायन-शास्त्री हैं। प्रत्येक वैज्ञानिकको एक सनक होती है। कहना यह चाहिये कि प्रतिभाका प्रसाद उसीको प्राप्त होता है, जो अपनी सनकका पक्का हो। मॉरीसन-को प्राचीन पदार्थशास्त्रके अन्वेषणकी सनक थी और विषय कोई हो, उसका प्राचीनतम साहित्य तो भारतके अतिरिक्त अन्यत्र उपलब्ध है नहीं। अल्बर्ट मॉरीसन भारतीय पदार्थ-शास्त्रका अन्वेषण कर रहे थे। उन्होंने पुराण, ज्योतिष तथा अन्य अनेकों सूत्र एवं कारिका-ग्रन्थ एकत्र कर लिये थे।

'केवल कल्पना है पारस?' अनेक बार यह विचार आता था—'एक भव्यकल्पना—भारतीय कल्पनाप्रवण होते हैं। कितनी पूर्ण—कल्पना की है उन्होंने।'

'कोई सामाजिक अव्यवस्था उत्पन्न नहीं होती। कोई लोभी कभी पारस नहीं पाता।' अल्बर्टका मन उन्हें सन्तुष्ट नहीं होने देता था—'केवल परम संतुष्ट संत उसे पाते या देखते हैं, वह उनके संतोषकी परीक्षा-मात्र बन सकता है। एक रहस्यसे बाहर आकर फिर रहस्य हो जाता है वह।'

'परमात्माके लिए कुछ असम्भव तो नहीं है।' वैज्ञानिक अल्बर्ट आस्तिक हैं—'जिन्हें भी पारस मिला वे सच्चे अर्थोंमें संत थे। अपने लाड़ले बच्चोंपर प्रभु अपना कोई रहस्य प्रकट कर दे—कोई कठिन बात तो नहीं है।'

"पारस पदार्थ है या कल्पना ?' साहित्यिक या समालोचक झटसे 'कल्पना' कह देगा ; किंतु एक रसायन-शास्त्री ऐसा कर नहीं पाता। 'लोहेके अणुओंमें केवल एक परिवर्तन उसे स्वर्ण बना देगा। यह परिवर्तन उसमें भार और रंग दोनों दे देगा। अवश्य उसका विस्तार—आकार संकुचित हो जायगा। पारस यदि कोई ऐसा पदार्थ हो, जो अपने स्पर्शसे लोहेके अणुओंमें अपेक्षित परिवर्तन कर देता हो ?'

'पारस प्राप्त हुए बिना तो समस्या सुलझती नहीं।' वैज्ञानिकका काम कल्पनासे नहीं चलता। वह प्रत्यक्षको ही प्रमाण मानता हैं। अल्बर्टको पारसकी आवश्यकता थी। पारस यदि कहीं हो--भारतमें ही हो सकता है, जहाँ अनेक बार पाया गया है अथवा उसे पानेकी कल्पना की गयी है।

भारतकी यात्रा कुछ कठिन नहीं थी वैज्ञानिकके लिए। वे केवल भ्रमण करने आनेवाले यात्री बनकर ही आये। उन्हें पता था कि पारस कभी जनसामान्यकी जानकारीमें नहीं आया। आज उसे पानेकी चर्चा भारतमें भी पागलपन ही कही ज़ायगी।

'कहाँसे कैसे अन्वेषण प्रारम्भ हो ?' कुछ ठीक उपाय सूझता नहीं था। अवश्य ही अलबर्टने भारतीय साधुओंके प्रति अपना आकर्षण व्यक्त कर दिया था। वे प्राय: पता लगाकर अच्छे कहे जानेवाले साधुओंके दर्शन करने पहुँचते थे।

'मुझे बड़े आश्रमोंवाला बड़ा साधु नहीं चाहिये।' बहुत शीघ्र उन्हें अनुभव हो गया कि जो प्रख्यात साधु हैं, वे सम्पन्न हैं और जहाँ सम्पत्ति स्वीकृत होती है, पारसका पता वहाँ पानेकी आशा भी नहीं की जा सकती। 'कौपीनधारी—जिसके पास कुछ न रहता हो, जो देनेपर भी पैसा न ले, ऐसा साधु चाहिये मुझे।'

भारतमें ऐसे अकिंचन वीतराग महापुरुषोंका कभी अभाव नहीं रहा। प्रारम्भमें कठिनाई हुई ; किंतु शीघ्र ही अलबर्ट ऐसे महत्-पुरुषोंसे परिचय करनेका मार्ग पा गये।

× × ×

'तुम पारस क्यों चाहते हो ?' एक वृक्षके नीचे अपने कमण्डलुपर मस्तक धरे एक कौपीनधारी अलमस्त लेटे थे। अब अलबर्टको घास या धूलिमें ऐसे साधुओंके समीप बैठनेमें संकोच नहीं होता। पतलूनके 'क्रीज' की चिन्ता कबकी छूट चुकी है।

'वह ऐसा पदार्थ नहीं हैं कि कुतूहल-निवृत्तिके लिए उसे पाया जा सके।' संत समझा रहे थे—'मुझे वह प्राप्त

नहीं। किसीको आज प्राप्त है या नहीं, मुझे पता नहीं ; किंतु तुम क्यों नहीं सोचते कि उसे पा लेनेपर कितनी अव्यवस्था हो जायगी समाजमें ?'

'आप चाहें तो उसे पा सकते हैं ?' अल्बर्टने पूछा। उनकी जिज्ञासा अभी तर्कसे तृप्त होनेको प्रस्तुत नहीं थी।

'परमात्मा परम दयालु है।' साधुका स्वर गद्‌गद हुआ। 'उसका कोई बच्चा कोई हठ कर ही ले तो वह दयामय उसे अवश्य पूर्ण कर देगा। पारस पदार्थ न भी हो तो उसे पदार्थ बना देनेमें उस सर्वशक्तिमान्‌को क्या देर लगेगी।'

'एक बार मैं उसे देख पाता।' रासायनिककी उत्कण्ठा आतुर हो उठी।

'क्या करोगे उसका ?' साधु हँसे। 'उसका आविष्कार संसारके लिए सबसे बड़ा विध्वंसक बम सिद्ध हो सकता है।'

'आज कितने कंगाल हैं लोग।' अल्बर्टने प्रार्थनाके स्वरमें कहा—'दरिद्रोंपर दया नहीं आती आपको ? उनका दुःख—उनके अभाव दूर करनेके लिए केवल कुछ घण्टोंको पारसका प्राप्त होना भी पर्याप्त हो सकता है।'

'बहुत भावुक हो तुम ! वैज्ञानिक भावुक नहीं हुआ करते।' साधु खुलकर हँसे—'आजकी समाज-व्यवस्था, आजकी शासन-व्यवस्था—तुम पारस प्राप्त कर लो तो स्वर्ण बनानेके लिए छिपते फिरोगे। पारस पता लगनेपर

तुमसे छीन लिया जायगा। तुम जेलमें बंद होओगे या तुम्हारी हत्या कर दी जायगी। आगे पारसका क्या होगा—तुम कोई अश्वासन नहीं दे सकते। पारस पाकर तुम कितनी अशान्ति लें लोगे—तुमने स्वयं सोचा है ?'

'आपके सत्यको अस्वीकार नहीं किया जा सकता।' वज्ञानिकने मस्तक झुका दिया—'सब आपत्तियाँ झेलकर भी यदि मैं कुछ कंगालोंकी सेवा कर सकूँ—आप मुझपर विश्वास कर सकते हैं कि मैं आपके देशके दरिद्रोंकी ही सेवा करूँगा। पारस या उससे बना स्वर्ण इस देशसे बाहर नहीं जायगा। मैं अपने उपयोगमें भी उसे नहीं लाऊँगा।

'तुम इस प्रकार कह रहे हो, जैसे पारस मेरे पास पड़ा है।' साधु फिर हँसे।

'आप उसे पा सकते हैं।' वैज्ञानिक निराश नहीं हुआ। वह अपने आग्रहपर स्थिर रहा—'दरिद्रोंका दुःख दूर करनेमें आप मेरी सहायता करेंगे।'

'जिनका चित्त सम्पत्तिके अभावमें दुखी है, वे दरिद्र हैं।' साधुने समझानेका मार्ग लिया—'जिनके पास सम्पत्ति नहीं है, वे दरिद्र हैं—ऐसा तो तुम नहीं मानते होगे; क्योंकि मेरे पास एक कौड़ी नहीं और मुझे दरिद्र मानकर मेरी सहायता करनेकी बात तुम सोच भी नहीं सकते।'

'सम्पत्तिके अभावमें जो दुखी हैं, वे दरिद्र हैं।' अल्बर्टने साधुकी परिभाषा स्वीकार की—'उनकी ही मैं सेवा करूँगा। आपके समान सन्तुष्ट महापुरुषोंकी

कोई क्या सेवा कर सकता है ?'

'आज तुम बम्बई चले जाओ !' साधुने आज्ञा की। 'दो दिन वहाँ रहो। इसके अनन्तर यदि पारसकी आवश्यकता प्रतीत हो तो यहाँ आ जाना।'

× × ×

'बड़ा दुखी है यह, पता नहीं बेचारेका कौन मर गया है।' अल्बर्ट मॉरीसन प्रथम श्रेणीमें रेलमें यात्रा कर रहे थे। उनके डिब्बेमें केवल एक यात्री थे। कोई भारतीय व्यापारी होंगे। उनके वस्त्र, कोटमें लगे हीरोंके बटन, अँगूठीमें जड़ा बड़ा-सा नीलम—अवश्य वे कोई सम्पन्न व्यक्ति होंगे ; किन्तु उनका श्रीहीन मुख, बार-बार लंबी श्वास लेना, बार-बार नेत्र पोंछना—कोई बहुत बड़ा दुःख उनपर आया जान पड़ता था।

'बाबू ! एक पैसा।' स्टेशनपर गाड़ी रुकी थी। गोदमें नवजात शिशु लिये मैले-फटे वस्त्रोंमें शरीर छिपाये एक कङ्कालप्राय भिक्षुणी आ खड़ी हुई। दैन्यकी साकार मूर्ति दीखती थी वह।

'चल ! भाग यहाँसे !' भारतीय व्यापारीने उसे दुत्कार दिया। वह तो जैसे इसकी अभ्यस्त हो गयी थी। बड़ा खेद हुआ अल्बर्टको। उसने अपनी जेबसे मनीबेग निकाला ; जो पहिला नोट हाथ आया, उस भिखारिनके हाथपर रखकर खिड़की बंद कर ली उसने।

'ये भिखारी अब भी पिंड नहीं छोड़ते।' व्यापारी

महोदय अपने आप बड़बड़ा रहे थे—'इन्हें अपनेसे मतलब ; कोई जीये या मरे, इन्हें पैसा चाहिये।'

'क्या कष्ट है इन्हें ?' इच्छा हुई अलबर्टको जाननेकी; किंतु बिना प्रयोजन किसी अपरिचितकी व्यक्तिगत बातोंमें बोलना असभ्यता है। अपने समाजके शिष्टाचारके कारण चुप रहना था और व्यापारी महोदय समझते नहीं थे कि साहब हिंदी जानता है। स्वयं वे अंग्रेजी बोलनेमें असमर्थ थे। गाड़ी सीटी देकर चल चुकी थी।

पर्याप्त समयतक उस डिब्बेमें दो ही यात्री रहे। ट्रेन जब बोरीबन्दर स्टेशन पहुँच गयी, तब भी दो ही यात्री उतरे उसमेंसे। अलबर्ट मॉरीसन मार्गमें अपनी पुस्तकके पन्नोंमें उलझ गये थे। उन्हें याद भी नहीं आयी कि वे डिब्बेमें एकाकी नहीं हैं।

'हैं !' दूसरे दिन प्रातःकाल होटलके अपने कमरेमें अलबर्टने जब प्रातःकाल अखबार उठाया, वे चौंक पड़े। एक बार उनके हाथसे अखबार छूटकर गिर पड़ा।

'भारतके प्रसिद्ध व्यापारी श्री··· ने कल रात आत्महत्या करली।' समाचारके प्रथम पृष्ठपर मोटा शीर्षक था। अलबर्टको स्मरण आया—यह नाम तो उन्होंने कल अपने साथ यात्रा करनेवाले व्यापारी महोदयके बक्सपर लिखा देखा था। तब क्या उन्होंने ··'

'उन्हें अपने सट्टेके व्यापारमें बहुत बड़ा घाटा लगा था।' समाचार-पत्रने विवरण दिया था—'अनुमान किया जाता है कि घाटा एक अरबके लगभग है। उसे दे डालनेपर उनकी केवल अपने रहनेकी बड़ी कोठी और दस-बारह

करोड़की सम्पत्ति बच रहेगी उनकी श्रीमतीजीके समीप।'

अलबर्टको स्मरण आया, वे भारतीय व्यापारी बड़-बड़ाते हुए कल कह रहे थे—'मैं कंगाल हो गया ! केवल कुछ करोड़ बचेंगे मेरे पास ! आजका अरबपति दरिद्र हो गया !'

'दरिद्र !' अलबर्ट फिर चौंके—'दस-बारह करोड़ और विशाल कोठी होनेपर भी वह अपनेको ऐसा दरिद्र समझता था कि मर गया आत्महत्या करके।'

'सम्भवतः वह आनन्दसे खिल उठी होगी एक रुपयेका नोट पाकर।' कलकी वह भिखारिन स्मृतिपटपर आयी—'दोनोंमें दरिद्र कौन ?'

'जिनका चित्त सम्पत्तिके अभावमें दुखी है, वे दरिद्र !' साधुके वचन स्मरण आये और मनने कहा—'सम्पत्तिके अभावकी कोई सीमा है ? कुछ ही करोड़ रहनेसे आत्महत्या कर लेनेवाला सेठ—असंतोष जिसे है, वह दरिद्र। यही तो अर्थ हुआ। ऐसे दारिद्रयकी दवा पारस कैसे कर सकता है।'

वैज्ञानिकने टेलीफोन डायरेक्टरी उठा ली थी। वे पूछना चाहते थे कि योरपके लिये वायुयान कब जा रहा है। पारस पानेकी कोई उत्कण्ठा अब उनमें रह नहीं गयी थी।

हारेको हरिनाम

नदी घड़ियालोंसे भरी थी, आकाश मच्छरोंसे, तटीय प्रदेश लम्बी घासोंसे, जिनमें विषैले सर्पोंकी गणना नहीं और वनमें हाथी, शेर, तेंदुए, चीते। वृक्षोंपर भी निरापद शरण लेना सम्भव नहीं था। वहाँ भी सर्प और तेंदुए स्वच्छन्द छलाँग ले सकते थे।

उसने सोचा भी नहीं था कि वर्माके इस प्रदेशमें उसे रात्रि व्यतीत करनी पड़ेगी। सूर्यास्तके पूर्व ही वे लौट जायँगे, ऐसा उनका विचार था। लेकिन सूर्य पश्चिममें पहुँच चुके और अब भी पता नहीं है कि वह स्वयं कहाँ है ? अपने शिविरसे कितनी दूर है।

किसी भी मानचित्रमें इधरकी नदीके मोड़ों एवं उसकी धाराओंका स्पष्ट अङ्कन नहीं है। इस दलदलसे पूर्ण प्रदेशमें आनेका साहस कोई नहीं करता। जब प्रातःकाल वह चला था, सबने रोका था उसे। एक अज्ञात प्रदेशमें केवल अनुमानके भरोसे जाना अच्छा नहीं, यह चेतावनी उसे अनेक बार मिली थी; किंतु वह शिकारी कैसा जो इस प्रकार डर जाय।

केवल एक मल्लाह प्रस्तुत हुआ था साथ चलनेको। वह मल्लाह इस ओर एक बार आ चुका था। आया वह भी था दुर्घटनावश ही; किंतु मार्ग उसने देख लिया था।

दूसरे लोगोंमें सब हतोत्साह करनेवाले ही थे।

'नदीकी कई धाराएँ हैं। मुख्य धारासे चलें तो दोपहर-तक समुद्रके समीप पहुँच जायँगे और जब समुद्रमें ज्वार आयेगा, नौका अपने आप ऊपर बह निकलेगी। हम दोनों संध्यातक यहीं आ जायँगे !' उस मल्लाहने बताया था।

'शिकारके लिए मगर, शेर, और दूसरे जानवर सरलतासे मिलेंगे !' यह बात पक्की थी—'नदीकी इस धाराका मानचित्र ठीक बनाया जा सकेगा !' यही बड़ा प्रलोभन था; क्योंकि वह वन-प्रदेशका अधिकारी भी तो है। देशको ठीक मानचित्र देना उसके कर्तव्यमें आता है।

इस ओर उसका पड़ाव आया था सात दिन पूर्व। वनका सर्वेक्षण चल रहा है। साथमें डाक्टर है, कई दूसरे कर्मचारी हैं और हेलीकोप्टर यान है। दलदलीय प्रदेशमें सर्वेक्षणका काम आकाशसे ही करना पड़ता है; किंतु इधर वन बहुत सघन है। पानीमें भी सर्वत्र ऊँची घास खड़ी है। आकाशसे नदीकी धाराका पता ही नहीं लगता। इन सब कारणोंसे और शिकारके प्रलोभनसे वह इतना हठ नहीं करता। मुख्य प्रलोभन था नदीके मार्गका अङ्कन करनेवाला वह माना जायगा और जब एक मल्लाह मार्गदर्शक है, साहस क्यों न किया जाय।

एकके स्थानपर दो छोटी नौकाएँ पसन्द कीं उसने। दोनों नौकाओंमें पीनेका पानी, दोपहरका भोजन, दूरबीन तथा अन्य आवश्यक सामान। लेकिन प्रस्थान करनेके दो-ढाई घण्टे बाद ही दोनोंने समझ लिया कि उनके सब

अनुमान ठीक नहीं हैं। नदीमें बहुत मोड़ थे—अनुमानसे बारह मोड़। धूपमें तेजी आयी तो शरीरका चमड़ा जसे भस्म होने लगा। दोनों नौकाएँ एकमें बाँध दी गयीं और उन्होंने बारी-बारीसे खेना प्रारम्भ किया।

मच्छरोंका आक्रमण चल रहा था। उनसे बचना कठिन था। घड़ियाल मिले—अच्छे बड़े भी मिले; किंतु मल्लाहने सलाह दी कि 'अभी कारतूस उपयोगमें न लाये जायँ। पता नहीं कब कैसी परिस्थिति आ पड़े।' अब उसे भी अपने मार्गज्ञानपर भरोसा नहीं रह गया था। उसे जो कुछ मार्गके विषयमें स्मरण था, वह बहुत धुँधला एवं अपूर्ण था। नदी आगे चलकर दो धाराओंमे विभक्त हो गयी थी और उसे यह पता नहीं था कि उनमें मुख्य धारा कौन-सी है। वह धारासे परिचित है।

'तुम एक धारासे जाओ और मैं दूसरीसे।' अन्तमें उन्होंने निर्णय किया—'नदीकी दोनों धाराएँ अवश्य आगे मिल गयी होंगी। प्रत्येक दशामें हम तीसरे प्रहर लौट पड़ेंगे और यहाँ आकर दूसरे साथीकी प्रतीक्षा करेंगे!'

दोनों नौकाएँ पृथक्-पृथक् चल पड़ीं। अब न मच्छरोंको भगानेका अवकाश था और हाथोंको नौका खेनेसे विश्राम मिलना था। नदीसे घासके सड़नेकी गन्ध आ रही थी। ऊँची घासको चीरते ही नौकाको मार्ग बनाना था। साथका भोजन समाप्त हो गया और पानी भी। दोपहर ढलनेके लगभग है। प्रत्येक मोड़कर लगता है कि अब आगे दूसरी धारा आ मिलेगी; किंतु मोड़ बीतते

ही दूसरा मोड़ दीखने लगता है।

संयोगसे तटपर सूखी भूमि दृष्टि पड़ी। कुछ फलके वृक्ष भी थे। पके मधुर फलोंने आकृष्ट किया। नौका तटसे बाँध दी एक घासके झुरमुटमें और कूद पड़े। राइफल भूमिमें पटक दी वृक्षपर चढ़ते समय। बड़े स्वादिष्ट फल—भरपेट जमकर खाया। शाखापर बैठकर शरीरको विश्राम दिया; किंतु जब उतरनेकी इच्छा की—'हे भगवान्!'

नीचे राइफलकी नालपर सूर्यकी किरणें चमक रही थीं और एक कद्दावर शेर उसपर पंजे रखकर गुर्रा रहा था। वह राइफलके सर्वेक्षणमें लगा था। वृक्षपर भी कोई है, इस ओर उसका ध्यान नहीं था।

'अब क्या हो?' वृक्षपर शिकारीका रक्त जमा जा रहा था। उसकी पतलूनकी दोनों जेबोंमें रिवाल्वर हैं; किन्तु रिवाल्वरकी गोली वनराजको क्रुद्ध करनेके अतिरिक्त और कर भी क्या सकती है।

विपत्ति अकेली नहीं आती। तटकी ओर दृष्टि गयी तो नौका नदारद। नदीका पानी अब पूरे वेगसे नीचे बह रहा था। समुद्रमें सम्भवतः भाटा आ चुका था। नदी उतर रही थी। पानीमें प्रवाह आनेके कारण नौका नीचे बह गयी थी। घास उसे रोकनेमें समर्थ नहीं हुई। अपनी असहायताका अनुभव करके उसके मुखसे चीख निकल गयी।

कभी-कभी अनचाही बात भी सहायक हो जाती है। शेर गुर्राया चीख सुनकर। उसने सिर उठाकर ऊपर

देखा और उठ खड़ा हुआ। पता नहीं क्या सोचा उसने, किन्तु धीर पदोंसे वनमें चला गया। शिकारीकी जानमें जान आयी। वह उतरा वृक्षसे। नदीके किनारे-किनारे नौका ढूँढ़ने चलनेके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं था उसके पास। एक आशा थी—'कदाचित् कहीं घासमें या मोड़पर वह अटक-उलझ जाय।'

कितनी दूर गया वह, स्वयं उसे पता नहीं। दिन छिपनेको आ गया। नौकाका पता न मिलना था, न मिला। अब अंधकार होनेसे पहिले उसे कोई ठीक स्थान रात्रि व्यतीत करनेको ढूँढ़ लेना चाहिये। समुद्रमें ज्वार आयेगा तब नौका स्वतः ऊपर लौट आयेगी—यही आशा थी।

उसने लकड़ियाँ इकट्ठी कीं। अन्धकार होनेसे पूर्व अग्नि जला ली। अब अग्निके सहारे रात्रि-व्यतीत कर सकता है वह। लेकिन सूर्यास्तके साथ बादल छा गये। अन्धकार ऐसा कि अपना हाथ भी दिखायी न दे। अग्निमें बार-बार लकड़ियाँ डालता रहा। यही एक आश्रय था प्राणरक्षाका। उसे लगा कि लकड़ियाँ थोड़ी हैं। आधी रात भी अग्नि जल नहीं सकेगी। अग्निके प्रकाशमें इधर-उधर दृष्टि दौड़ायी तो नदीके समीप एक बड़ा काला कुन्दा दीख पड़ा। वह गया और घसीटते हुए कुन्देको ले ही आता—पर कुन्दा उसके समीप पहुँचते ही पानीमें सरक गया। 'घड़ियाल!' काँप गया उसका शरीर।

अग्नि स्वतः बुझनेवाली थी, वर्षा ऊपरसे प्रारम्भ हो गयी। राइफलका सहारा लिए वह वृक्षके तनेके समीप

खड़ा हो गया। अब अन्धकारमें राइफल भी व्यर्थ थी। दूसरी ओर नदीका पानी बढ़ रहा था। वह जहाँ खड़ा था, वह भूमि धीरे-धीरे जलके भीतर होने लगी।

वृक्षपर कोई कूदा—कोई भारी वनपशु और नदीमें भारी ध्वनि हुई। तेंदुआ और घड़ियाल—मृत्युने अब झपट्टा मार दिया था उसने ऊपर। एक कड़ा झटका पीठपर लगा और राइफल हाथसे छूटकर पानीमें छपाक करती गिरी।

'हे भगवान् !' प्राण जाते समय प्राणीके कण्ठसे जो आर्तनाद फूटता है—बिना अनुभवके कोई उस स्वर-को समझ नहीं सकता। कोई आशा, कोई युक्ति, कोई बल जब नहीं रह जाता और मृत्युका कराल खुला जबड़ा सम्मुख दिखायी पड़ता है—अहोभाग्य उसका जो उस समय भी उस परम सहायकको पुकार सके ! उस सर्व-समर्थको पुकारकर तो कोई कभी निराश नहीं हुआ है।

सहसा आकाशकी घटामें-से चन्द्रमाकी किरणें निकल पड़ी। उसने उस ज्योत्स्नाधौत जलमें जो कुछ देखा—अद्भुत, रोमाञ्चकारी और चकित कर देनेवाला दृश्य था वह। उसके ठीक पीछे तेंदुआ कूदा था और अब उससे घड़ियालका युद्ध चल रहा था। सम्भवतः घड़ियालने जब स्वयं उसका पैर पकड़ना चाहा, तेंदुआ वृक्षपरसे कूदा। घड़ियालके मुखमें तेंदुएका पैर आ गया था। घड़ियाल उसे खींच रहा था और एक पैर किसी जलमें डूबी वृक्षकी जड़में अड़ाये तेंदुआ दूसरे पैरके पंजे घड़ियाल-पर फटकारे जा रहा था। घड़ियाल पूँछ फटकार रहा था,

जिससे तेंदुआ उसे मुखपर न मार सके और इस युद्धमें उछलते छींटे समीप खड़े मनुष्यको भिगा रहे थे।

उसने झुककर पानीमें-से अपनी राइफल उठायी। कण्ठसे फिर निकला—'दयामय प्रभु! और सिर उठाता है तो देखता है कि काली लम्बी वस्तु नीचेसे ऊपर नदीमें ज्वारके वेगमें बहती चली आ रही है। दो क्षणमें स्पष्ट हो गया कि वह उसकी नौका है।

× × ×

'मैं सायंकाल यहाँ पहुँचा था!' मल्लाह ठीक वहाँ प्रतीक्षा कर रहा था, जहाँसे वे पृथक् हुए थे। 'नदीकी मुख्य धारा वह है, जिससे आप गये थे। किंतु यह शाखा छोटी है। ज्वारने जब मुझे यहाँ पहुँचाया—अँधेरा घिर आया था। किसी प्रकार मैं रस्सी वृक्षमें उलझाकर यहाँ रात्रिमें टिका रहा।'

'मैं सर्वथा असहाय हो चुका था।' अरुणोदयके समय वे मल्लाहसे मिले थे और नावमें साथ चलते हुए बता रहे थे—'नदीके मार्गकी शोध और मेरी रक्षा उसने की जो सदासे असहायकी रक्षा करता आया है। जब मेरा बल थक गया, शस्त्र गिर गया, वह दयाधाम मेरी रक्षा करने आ पहुँचा था।'

———

श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवासंघ, मथुरा द्वा

प्रकाशित पुस्तकें

ह्में

श्रीसुदर्शन सिंह 'चक्र' के ग्रन्थ—

भगवान वासुदेव—(श्रीकृष्णका मथुरा-चरित)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ४०२, सजिल्द, मूल्य १०)५०

श्रीद्वारिकाधीश—(श्रीकृष्णका द्वारिका-चरित)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ४००, सजिल्द, मूल्य १०)५०

पार्थ-सारथि (श्रीकृष्णका हस्तिनापुर-चरित)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ४३६, पक्की जिल्द, मूल्य १२)००
रैक्सीनयुक्त (बिना गत्तेकी जिल्द) मूल्य १०)००

शिव-चरित—डिमाई आ०, पृष्ठ ४२८, सजिल्द, मूल्य ११)२५

प्रद्युम्नकुमारकी आत्मकथा—
डिमाई आकार, पृष्ठ २१२, सजिल्द, मूल्य ७)५०

हमारी संस्कृति—डिमाई आ०, पृ० २६०, सजिल्द, मूल्य ७)२५

कर्म-रहस्य—डिमाई आकार, पृष्ठ १८४, मूल्य ४)००

आञ्जनेयकी आत्मकथा—(श्रीहनुमान-चरित)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ३१२, सजिल्द, मूल्य ९)००

साध्य और साधन (साधना, भगवद्दर्शन, गुरुतत्व)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ३८४, सजिल्द, मूल्य १०)००

रामचरित भाग-१— सजिल्द, पृष्ठ ३८३, मूल्य १०)००

रामचरित भाग-२— सजिल्द, पृष्ठ २७२, मूल्य ८)२५

राम-श्यामकी झाँकी भाग-१ —पृष्ठ १६०, मूल्य २)००

" " भाग-२ पृष्ठ १३२, मूल्य १)७५

हमारे धर्मग्रन्थ— पाकेट आकार, पृष्ठ ६७, मूल्य १)००

हिन्दुओंके तीर्थ-स्थान—पाकेट आ०, पृष्ठ २७४, मूल्य ३)५०

शिव-स्मरण— पाकेट आकार, पृष्ठ ८५, मूल्य १)२५

हमारे अवतार एवं देवी-देवता—
पाकेट आकार, पृष्ठ १०८, मूल्य १)५०

व्रजका एक दिन— पाकेट आकार, पृष्ठ ११०, मूल्य १)७५

सांस्कृतिक कहानियां प्रत्येक भाग—
पाकेट आकार, पृष्ठ १६०, मूल्य २)००